इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
प्रबंध अध्ययन विद्यापीठ

बी.सी.ओ.सी.-132

व्यावसायिक संगठन और प्रबंध

खंड

3

नियोजन तथा निर्णय लेना

इकाई 9
नियोजन और निर्णय लेना 5

इकाई 10
संगठन 26

इकाई 11
विभागीकरण तथा अधिकार संबंध के रूप 53

इकाई 12
प्रत्यायोजन और विकेंद्रीकरण 72

इकाई 13
नियंत्रण की प्रक्रिया 87

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

कार्यक्रम डिजाइन समिति – बी.कॉम (सी.बी.सी.एस.)

प्रो. मधु त्यागी
निदेशक, एस.ओ.एम.एस, इग्नू

प्रो. आर.पी. हुडा
पूर्व कुलपति, एम.डी.
विश्वविद्यालय, रोहतक

प्रो. बी.आर. अनंथन
पूर्व कुलपति, रानी चेन्नम्मां
विश्वविद्यालय, बेलगाँव, कर्नाटक

प्रो. आई. वी. त्रिवेदी
पूर्व कुलपति, एम.एल. सुखादिया
विश्वविद्यालय, उदयपुर

प्रो. पुरुषोत्तम राव (सेवानिवृत्त)
वाणिज्य संकाय
उस्मानिया विश्वविद्यालय,
हैदराबाद

प्रो. डी.पी.एस. वर्मा (सेवानिवृत्त)
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. के.वी. भानुमूर्ति (सेवानिवृत्त)
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. कविता शर्मा
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. खुर्शीद अहमद बट
डीन, वाणिज्य एवं प्रबंधन संकाय,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

प्रो. देवब्रत्त मित्रा
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
उत्तर बंगाल विश्वविद्यालय,दार्जिलिंग

प्रो. आर.के. ग्रोवर (सेवानि.)
प्रबंध अध्ययन विद्यापीठ, इग्नू

संकाय सदस्य
एस.ओ.एम.एस. इग्नू

प्रो. एन.वी. नरसिम्हम

प्रो. नवल किशोर

प्रो. एम.एस.एस. राजू

डॉ. सुनील कुमार

डॉ. सुबोध केशरवानी

डॉ. रश्मि बंसल

डॉ. मधुलिका पी. सरकार

डॉ. अनुप्रिया पाण्डेय

पाठ्यक्रम डिजाइन समिति

प्रो. मधु त्यागी
निदेशक, एस.ओ.एम.एस, इग्नू

प्रो. डी.के. वैद (सेवानि.)
एन.सी.ई.आर.टी. दिल्ली

प्रो. भानु मूर्ति (सेवानि.)
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. ए.के. सिंह
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. विजय कुमार श्रोत्रिया
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. राजेन्द्र महेश्वरी (सेवानि.)
रामानुजम कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संकाय सदस्य
एस.ओ.एम.एस. इग्नू
प्रो. एन.वी. नरसिम्हम
प्रो. नवल किशोर
प्रो. एम.एस.एस. राजू
डॉ. सुनील कुमार
डॉ. सुबोध केशरवानी
डॉ. रश्मि बंसल
डॉ. मधुलिका पी. सरकार
डॉ. अनुप्रिया पाण्डेय

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम निर्माण दल

व्यवसाय संगठन : ई.सी.ओ.-03
(प्रो. नवल किशोर द्वारा संशोधित इकाइयाँ 4,6,7,8,15 व 16)
प्रो. पी.के. घोश (सेनि.), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो. बी.पी. सिंह (सेनि.), डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
श्री पी.एस. प्रसाद, इंस्टियूट ऑफ चार्टड अकाउन्टेड ऑफ इंडिया
प्रो. डी.पी. शर्मा (सेनि.), एस.के. विश्वविद्यालय अनंनतपुर (ए.पी.)
डॉ. बी.बी. कंसल, एम.एम. कॉलेज, मोदी नगर
डॉ. जी.एस. सुन्द्रेश, मोतीलाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली

प्रो. नवल किशोर
(संपादक एवं पाठ्यक्रम समन्वयक)

डॉ. सुबोध केशरवानी
(संपादक एवं पाठ्यक्रम समन्वयक)

अनुवाद
श्री रामतप पाण्डेय
पुष्पांजलि इन्क्लेव, दिल्ली
डॉ. एन.मिश्रा
मोती लाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली
डॉ. आर.एन. गोयल
देशबंधु गुप्ता कॉलेज, दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री वाई. एन. शर्मा
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

श्री सुधीर कुमार
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

अगस्त, 2019

©इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2019

ISBN- 978-93-89499-25-4

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के बारे में विश्वविद्यालय कार्यालय मैदान गढ़ी, नई दिल्ली से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण विभाग द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक : पी. स्क्वायर सॉल्यूशन्स, एच-25, साईट-बी, इण्डस्ट्रीयल एरिया, मथुरा

खंड 3 नियोजन तथा निर्णय लेना

खंड 1 में आपने प्रबंध के प्रत्येक कार्य के अर्थ और महत्व के संबंध में पढ़ा। इस खंड में प्रथम दो कार्यों अर्थात् नियोजन और संगठन के संबंध में विस्तार से चर्चा की गई है। मुख्य रूप से इसमें नियोजन के मूल तत्वों, योजनाओं के प्रकार, संगठन की मूल संकल्पनाओं, विभागीकरण के आधार, संगठन संरचना के प्रकार तथा प्रत्यायोजन और विकेंद्रीकरण की संकल्पनाओं की व्याख्या की गई है।

इकाई 9 में नियोजन की प्रकृति और महत्व, नियोजन की प्रक्रिया, नियोजन के प्रकार और नियोजन के अनिवार्य सिद्धांतों के संबंध में विवेचन किया गया है।

इकाई 10 में संगठन के महत्व और संरचना, औपचारिक और अनौपचारिक संगठनों की संकल्पना, पर्यवेक्षण के विस्तार तथा संगठनात्मक चार्टों और पुस्तिकाओं की चर्चा की गई है।

इकाई 11 में विभागीकरण की संकल्पना, विभागीकरण के आधार और प्राधिकार संबंधों के रूपों की चर्चा की गई है।

इकाई 12 में प्राधिकार के प्रत्यायोजन की प्रक्रियाओं और सिद्धांतों तथा केन्द्रीकरण और विकेंद्रीकरण की संकल्पना की व्याख्या की गई है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 नियोजन और निर्णय लेना

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 नियोजन क्या है ?
9.3 नियोजन की प्रकृति एवं विशेषताएँ
9.4 नियोजन का महत्व
9.5 नियोजन की सीमाएँ
9.6 नियोजन की प्रक्रिया
9.7 नियोजन के प्रकार
9.8 नियोजन के सिद्धांत
9.9 निर्णय लेना
9.10 सारांश
9.11 शब्दावली
9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.13 स्वपरख प्रश्न

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- नियोजन के प्रबंध कार्य के अर्थ, प्रकृति और महत्व को स्पष्ट रूप में बता पाएँगे,
- नियोजन की प्रक्रियाओं के विभिन्न चरणों को बता सकेंगे,
- सामरिक नियोजन, युक्तिपूर्ण नियोजन, दीर्घकालिक नियोजन, अल्पकालिक नियोजन आदि विभिन्न प्रकार के नियोजनों के विवरण दे पाएँगे,
- उन सिद्धांतों को समझ पाएँगे जिन पर योजना आधारित होती है।

9.1 प्रस्तावना

नियोजन (planning) प्रबंधकों के महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है जिसका अन्य कार्यों के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। वास्तविकता तो यह है कि संगठन के सभी स्तरों पर नियोजन को सदा ही प्रबंधकों का प्रमुख कार्य माना जाता है। हाल के वर्षों में समस्त विश्व में नियोजन के प्रति बहुत अधिक रुचि दिखाई जाने लगी है–ऐसा विशेषतः निगमों (corporations) से संबंधित, दीर्घकालिक तथा सामरिक (strategic) योजना के संबंध में हुआ है।

इस इकाई में आप नियोजन के मूल तत्वों अर्थात् इसका अर्थ, स्वरूप, विशेषताएँ, महत्व और सीमाओं की जानकारी प्राप्त करेंगे। नियोजन की प्रक्रिया में कौन–कौन से तत्व और प्रक्रियाएँ होती है और नियोजन में पूर्वानुमान का क्या योगदान होता है, इसके बारे में आप

अध्ययन केरंगे। आगे चलकर आप यह भी देखेंगे कि सामरिक नियोजन, युक्तिपूर्ण नियोजन, दीर्घकालिक नियोजन और अल्पकालिक नियोजन तथा संगठन की क्या संकल्पनाएँ हैं और योजना के मूल सिद्धांत क्या हैं।

9.2 नियोजन क्या है?

हमारे दैनिक जीवन में नियोजन का क्या अर्थ है इससे हम में से अधिकतर व्यक्ति भली भांति परिचित हैं। सारे दिन में हमें क्या–क्या कार्य करने हैं, इसके संबंध में हम प्रायः पहले से ही निर्णय कर लेते हैं। माँ–बाप पहले से ही निर्णय कर लेते हैं कि बच्चों को किस प्रकार की शिक्षा दिलानी है। छात्र पहले से ही यह सोच लेता है कि उसे अपनी परीक्षा की तैयारी किस प्रकार से करनी है, अपने समय का सदुपयोग किस प्रकार से करना है आदि। एक आम आदमी के लिए नियोजन का अर्थ यह होता है कि किसी कार्य के संबंध में सही रूप से निर्णय लिया जाए और उसे उद्देश्यपूर्ण ढंग से किया जाए।

परंतु औपचारिक संगठनों और उनके प्रबंध के संदर्भ में नियोजन की संरचना का एक विशिष्ट अर्थ होता है। इसका अर्थ यह होता है कि पहले से ही निर्णय ले लिया जाए कि किसी विशेष अवधि के लिए भविष्य में क्या किया जाना है और फिर इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए उचित कदम उठाये जाएँ। इसका यह भी अर्थ होता है कि भविष्य के संबंध में अनुमान लगाया जाए। यह जानने का प्रयास किया जाए कि भविष्य में क्या होने वाला है, संगठन पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, संगठन को किस दिशा में कार्य करना चाहिए और भविष्य में होने वाली घटनाओं का सामना किस प्रकार किया जा सकता है। नियोजन से यह भी अभिप्राय होता है कि विकल्पों के बीच इस प्रकार चुनाव किया जाए कि निकट भविष्य तथा दीर्घकाल के लिए संगठन के लक्ष्यों का निर्धारण हो सके। नियोजन की कल्पना मात्र से ही हमारे मन में कार्य के प्रति सुव्यवस्थित और स्पष्ट मार्ग, लक्ष्य–निर्धारित व्यवहार, किसी वस्तु के संबंध में पहले से ही सोचने और इसके लिए व्यवस्था करने तथा दुर्लभ साधनों के तर्कसंगत ढंग से बंटवारे आदि के संबंध में चित्र उभर आते हैं। संक्षेप में नियोजन की परिभाषा है ''भविष्य के लक्ष्यों को निर्धारित करने की प्रक्रिया तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए साधन (ways and means) के संबंध में निर्णय लेना''।

9.3 नियोजन की प्रकृति एवं विशेषताएँ

नियोजन के प्रबंध कार्य की कुछ अपनी ही विशेषताएँ हैं जो उसे अन्य प्रकार के प्रबंध कार्यों से अलग करती है। परन्तु इसकी कुछ विशेषताएँ तो अन्य प्रबंध कार्यों की विशेषताओं जैसी ही होती हैं। इन सभी विशेषताओं के योग से नियोजन कार्य के स्वरूप का निर्माण होता है। इन विशेषताओं के संबंध में नीचे चर्चा की गई है:

1) **नियोजन की प्रमुखता** : प्रबंध संबंधी सभी कार्यों से पहले नियोजन का स्थान आता है। प्रबंध की प्रक्रिया का प्रारंभ नियोजन के साथ होता है। संगठन, कर्मचारी भर्ती, निदेशन तथा नियंत्रण आदि कार्य नियोजन पर ही आधारित होते हैं हालांकि ये सभी कार्य अत्यन्त अंतःसंबंधित तथा एक दूसरे के ही समान महत्वपूर्ण भी हैं। नियोजन वह प्रमुख कार्य है जिससे अन्य कार्यों को आवश्यक आधार प्राप्त होता है।

2) **प्रक्रिया के रूप में नियोजन** : नियोजन एक प्रक्रिया है जिसमें कुछ चरण और सोपान होते हैं। यह प्रबंध–प्रक्रिया की एक उप प्रक्रिया है। नियोजन–प्रक्रिया का प्रारंभ संगठन के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों को पहचानने तथा उसका अंत, योजनाओं को कार्यान्वित करने की व्यवस्था करने के साथ होता है।

3) **नियोजन की व्यापकता :** नियोजन प्रबंध–तंत्र के सभी स्तरों मुख्य प्रबंधक से लेकर प्रथम पंक्ति के पर्यवेक्षक तक के प्रबंधकों का व्यापक कार्य है। फिर भी भिन्न–भिन्न स्तर के कार्यों की विषय वस्तु और किस्म (content and quality) फिर भी भिन्न–भिन्न प्रकार की होती है। नियोजन पर भिन्न–भिन्न मात्रा में समय भी लगाए जाते हैं। मुख्य प्रबंधक तथा उच्च स्तर के अन्य प्रबंधक कंपनी के योजना कार्यों में लगे होते हैं। संगठन पर नियोजन संबंधी उनके निर्णयों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। मध्यम तथा नीचे स्तर के प्रबंधकों के हाथ में योजना संबंधी अत्यन्त सीमित कार्य होते हैं।

संगठन के विभिन्न कार्य क्षेत्रों में भी नियोजन व्यापक होता है। उदाहरणार्थ किसी निर्माण उद्योग (manufacturing enterprise) में उत्पादन योजना, वस्तुओं की आवश्यकताओं संबंधी नियोजन, मानव संसाधन नियोजन, वित्तीय नियोजन आदि बनाई जाती हैं।

4) **भविष्य उन्मुखीकरण (Future orientation)**–नियोजन भविष्य उन्मुखी होता है। हेनरी फेयोल के शब्दों में नियोजन का अर्थ है भविष्य की ओर देखने (भविष्य के संबंध में सोचने) की प्रक्रिया तथा भविष्य की घटनाओं और स्थितियों से निपटने की व्यवस्था करना। इससे अभिप्राय यह है कि जैसे–जैसे हम भविष्य में प्रवेश करते हैं वैसे–वैसे उसमें आने वाली अनिश्चितताओं और अज्ञातों का सामना करने में नियोजन हमारी सहायता करता है।

इस बात को दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि नियोजन भविष्य उन्मुखी होने के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। अतीत या वर्तमान के लिए हम योजनाएँ नहीं बनाते। परन्तु यह भी सच है कि भविष्य के संबंध में योजना बनाते समय प्रबंधक–वर्ग संगठन के बाहर और भीतर की अतीत और वर्तमान की घटनाओं और स्थितियों को भी ध्यान में रखता है।

5) **सूचना का आधार**–नियोजन को सूचना से मदद मिलती है। सूचना के बिना नियोजन का कोई अर्थ नहीं होता। नियोजन के लिए भूतकाल की प्रवृत्तियों, वर्तमान स्थितियों और भविष्य की संभावनाओं के संबंध में जानकारी होना आवश्यक होता है। नियोजन संबंधी विषयों और समस्याओं को समझने, विकल्पी मार्ग निकालने तथा योजनाओं को मूल्यांकित करके उन्हें अंतिम रूप देने के कार्य में सूचना का होना अत्यन्त आवश्यक होता है।

6) **विवेकपूर्णता (Rationality)**–नियोजन विवेकपूर्ण प्रबंध कार्य होता है। इसका अर्थ यह है कि नियोजन प्रबंध संबंधी उद्देश्यपूर्ण तथा सतर्क कार्य होता है। इसे पर्याप्त सूचना, ज्ञान तथा कल्पनाशक्ति से मदद मिलती है। प्रबंधक, जो योजनाकार भी होते हैं नियोजन के संबंध में प्रायः वस्तुपरक तथा भावुकताहीन दृष्टिकोण अपनाते हैं। नियोजन संबंधी समस्याओं के संबंध में उनके विचार स्पष्ट होते हैं और उन्हें मालूम होता है कि उनसे किस प्रकार से निपटना है। नियोजन के परिणाम के संबंध में जानकारी रखते हुए वे उसके संबंध में निर्णय लेते हैं।

7) **औपचारिक तथा अनौपचारिक स्वरूप :** नियोजन में औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही प्रकार के तत्व होते हैं। औपचारिक नियोजन से अभिप्राय होता है नियोजन संबंधी निर्णयों पर पहुँचने के लिए की गई व्यवस्थित तथा कठिन प्रक्रिया जो विभिन्न कारकों के संबंध में छानबीन तथा विश्लेषण के द्वारा की जाती है। औपचारिक नियोजन अधिक स्पष्ट तथा निर्बाध होता हैः नियोजन के विभिन्न पक्षों को सफल

बनाने का दायित्व प्रबंधकों का होता है। लिखित रूप में योजनाओं को संगठन के माध्यम द्वारा प्रबंधक स्तरों तक पहुँचा दिया जाता है। अनौपचारिक नियोजन को प्रबंधक सहजबोधनीय प्रक्रिया के द्वारा करते हैं। वे योजनाओं को अपने मस्तिष्क में निश्चित लेकिन लचीले इरादों से रखे रहते हैं तथा दूसरों को वे इन्हें मौखिक रूप से बता देते हैं। औपचारिक नियोजन की व्यवस्थित क्रमानुसार और तर्कसम्मत प्रक्रिया के विपरीत अनौपचारिक नियोजन को क्रमशः एक प्रयत्न–त्रुटि (trial and error) खंडित और सविराम (intermittent) प्रक्रिया के रूप में भी देखा जा सकता है।

8) **बौद्धिक प्रक्रिया** : नियोजन बौद्धिक प्रक्रिया है इसके लिए मूर्त और अमूर्त रूप में सोचने, भविष्य के संबंध में सोचने और उसे देखने तथा भविष्य की प्रत्याशाओं और इच्छाओं संबंधी विचार और चित्र बनाने की योग्यताएँ आवश्यक होती हैं। इसके लिए ऐसी बौद्धिक योग्यताओं की भी जरूरत पड़ती है जिससे उपलब्ध होने वाले अवसरों और पर्यावरण के खतरों को पहले से जाना जा सके, समस्याओं को समझा जा सके, अपनाए जाने वाले विकल्पी मार्गों को विकसित किया जा सके तथा उचित मार्ग के चुनाव के लिए उनका विश्लेषण किया जा सके।

9) **प्रयोजनात्मक, कार्योन्मुखन (Pragmatic, action–orientation)**–यद्यपि नियोजन एक बौद्धिक चिंतन प्रक्रिया है फिर भी यह मुख्यतः प्रयोजनात्मक–और कार्योन्मुखी होता है। कार्य करने से पहले ही नियोजन करना होता है और इसलिए कहा जाता है कि नियोजन का अर्थ है पहले से ही कार्य की व्यवस्था कर देना। कार्य करने से पहले सोचना और निर्णय लेना नियोजन योजना की विशेषता है। केन्द्रबिन्दु तो नियोजन की व्यवहार्यता अर्थात् कार्यान्वित होने की उसकी योग्यता होती है। नियोजन यथार्थ–उन्मुख भी होता है।

10) **निर्णयन (Decision making) के रूप में नियोजन** : नियोजन के अंतर्गत समस्या समाधान और निर्णय लेने के कार्य आते हैं। विषयों और समस्याओं को समझने, आवश्यक सूचना एकत्रित करने, विकल्पी मार्गों का मूल्यांकन करने तथा सर्वसमुचित विकल्प का चयन करने की यह एक प्रक्रिया है। संगठन के उद्देश्यों, युक्तियों, नीतियों, कार्यक्रमों, कार्यविधियों तथा अन्य योजनाओं के संबंध में निर्णय लिए जाते हैं। ये सभी विकल्पों में से चुने जाते हैं। इनके अंतर्गत संसाधनों के जुटाव, वितरण और सुपुर्दगी तथा विशेष दिशाओं में किए गए प्रयास शामिल होते हैं।

11) **नियोजन आधारिका (Planning premises)** : भविष्य में क्या घटनाएँ होंगी तथा परिवेश में किस प्रकार की स्थितियाँ होगी, उनसे संबंधित कुछ धारणाओं और अनुमानों पर नियोजन आधारित होता है। औपचारिक रूप से इन्हें ''नियोजन आधारिका'' कहा जाता है जिन्हें पूर्वानुमान की प्रक्रिया से निकाला जाता है। इन धारणाओं के अभाव में नियोजन अटकल का विषय बन कर रह जाता है। नियोजन कार्य के लिए प्रबंधक भविष्य की घटनाओं के संबंध में आधारिकाएँ तथा धारणाएँ (premises and assumptions) इसलिए बनाते हैं कि अनिश्चितताओं तथा परिवेश की जटिलताओं के बीच सुरक्षा तथा निश्चितता की भावना पैदा की जा सके।

12) **गतिकता (Dynamism) :** नियोजन गतिक प्रक्रिया है। यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत कोई संगठन बाह्य परिवेश में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप ही अपने आप में भी परिवर्तन लाकर कार्य करता है। यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई संगठन अपनी कार्यवाहियों में लचीलापन तथा अनुकूलता लाता है। इसके अतिरिक्त यह वह प्रक्रिया भी है जिसके अधीन संगठन के लक्ष्यों, संसाधनों, निर्देशों, अवसरों और

समस्याओं का निरंतर मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन किया जाता है और उन्हें इसकी आवश्यकताओं के अनुरूप बना लिया जाता है।

13) **नियोजन के स्तर** : नियोजन के क्षेत्र, महत्व और समय अवधि के अनुरूप ही इसका विभाजन प्रायः कुछ स्तरों में किया जाता है। कार्यक्षेत्र के आधार पर इसके दो स्तर होते हैं: (i) निगम नियोजन (corporate planning) जिसके अंतर्गत समस्त संगठन आ जाता है तथा (ii) उपनिगम नियोजन या कार्यमूलक नियोजन (functional planning) जो विभिन्न कार्यमूलक इकाइयों या विभागों के अंतर्गत ही कार्यान्वित किया जाता है। महत्व के आधार पर नियोजन का विभाजन सामरिक नियोजन और युक्तिपूर्ण या कार्यमूलक नियोजन के बीच किया जा सकता है। समय अवधि के आधार पर दो स्तर होते हैं: (i) दीर्घावधि नियोजन जिसके अंतर्गत प्रायः एक वर्ष से अधिक की अवधि होती है और (ii) अल्पावधि नियोजन जिसके अंतर्गत एक वर्ष या इससे भी कम की अवधि होती है। अनेक स्तरों में नियोजन के विभाजन से उसके आयामों (dimensions) और महत्वपूर्ण तत्वों के विश्लेषण का कार्य सरल हो जाता है। फिर भी यह स्मरणीय है कि नियोजन एक सुबद्ध कार्य (integrated function) है, अतः इसके विभिन्न स्तरों के लिए संतुलित तथा समन्वित होना आवश्यक होता है जिससे कि वे एक दूसरे की सहायता कर सकें।

14) **योजना के प्रकार** : नियोजन की प्रक्रिया के दौरान ही अनेक प्रकार की योजनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। जिन्हें निर्णयों और कायक्रमों की श्रेणी या क्रम कहा जा सकता है। इसके अंतर्गत उद्देश्य या लक्ष्य, विधियाँ, नीतियाँ, कार्यक्रम बजट, सूचियाँ, कार्यप्रणालियाँ, नियम आदि आते हैं। इनमें से उद्देश्य और बजट जैसी योजनाएँ नियोजन प्रक्रिया के अनिवार्य तत्व का कार्य करते हैं जबकि नीतियाँ, कार्यप्रणालियाँ, नियम और विधियां निर्बाध नियोजन को सरल बनाने वाले यंत्र का कार्य करते हैं। सभी प्रकार की योजनाओं का विभाजन दो मुख्य वर्गों में किया जाता है: (i) एकल उपयोग की योजनाएँ (single use plans) तथा (ii) स्थायी योजनाएँ (standing plans) एकल उपयोग योजनाएँ विशिष्ट, अनावर्ती (non-repetitive) और विशेष स्थितियों के लिए बनाई जाती हैं जबकि स्थायी योजनाएँ प्रायः स्थिर प्रकार की होती हैं और इनका उपयोग दीर्घावधि में उत्पन्न होने वाली आवर्ती स्थितियों से निपटना होता है।

9.4 नियोजन का महत्व

नियोजन के संबंध में अब तक आप जो कुछ पढ़ चुके हैं उससे आप इसके महत्व को भलीभांति समझ गए होंगे। आइये अब नियोजन कार्य के महत्व का अध्ययन करें:

1) **निर्देशन प्रदान करता है** : संगठन की क्रियाओं तथा प्रबंधकों आदि के कार्यों के संबंध में नियोजन मार्ग–निर्देश प्रदान करता है। संगठन किस ओर और किस लिए जा रहा है, चुने हुए मार्ग पर किस प्रकार से संगठन को चलाया जाए और इसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किस प्रकार से समुचित कदम उठाए जाएँ इन सब को समझने में नियोजन से सहायता प्राप्त होती है।

2) **विकल्प कार्य–योजनाओं के विश्लेषण के लिए अवसर प्रदान करता है** : एक अन्य प्रकार से नियोजन का महत्व यह है कि इससे प्रबंधकों को यह समझने और विश्लेषण करने में सहायता मिलती है कि विकल्प कार्य–योजनाओं का परिणाम क्या होगा। निर्णय लेने या कोई कार्य करने के संबंध में यदि प्रबंधक विकल्प कार्य–योजनाओं के

संभावित भावी परिणाम को अच्छी तरह से समझ लेंगे तो उपयुक्त तथा समुचित कार्य योजना के चुनाव के संबंध में निर्णय लेने में उन्हें आसानी हो जाएगी।

3) **अनिश्चितताओं को कम करता है** : नियोजन प्रबंधकों को आलस्य और संकीर्ण दृष्टिकोण को छोड़ने को बाध्य करता है। इससे उन्हें इस बात की भी प्रेरणा मिलती है कि वे अपने आज–कल तथा तत्काल की समस्याओं के आगे की बातों को भी सोचें। यह उन्हें प्रोत्साहित करता है कि वे परिवेश की जटिलताओं और अनिश्चितताओं को छानबीन करें तथा परिवर्तन के तत्व पर नियंत्रण कायम करें।

4) **आवेगी और मनमाने (Impulsive and arbitrary) निर्णयों को कम करता है:** नियोजन आवेगी और मनमाने निर्णयों तथा तदर्थ कार्यों (adhoc actions) के प्रभावों को कम करता है, तथा भाग्य और संयोग के तत्वों पर निर्भरता को दूर करता है, प्रबन्ध कार्यों में बड़ी त्रुटियों और असफलताओं की संभावना को घटाती है। यह प्रबन्ध संबंधी सोच विचार और संगठनात्मक कार्य में अनुशासन लाती है। यह संगठन को इस लायक बनाता है कि वह संभावित खतरों का सामना कर सके। स्पष्ट सीमाओं के अंतर्गत वह प्रबंधकों की स्वतन्त्रता तथा लचीलेपन को बढ़ाता है।

5) **प्रमुख कार्य (Kingpin function) :** जैसा कि पहले बताया जा चुका है, नियोजन वह मुख्य प्रबंध कार्य है जो अन्य प्रबंध कार्यों के लिए आधार तैयार करता है। कार्य के संगठनात्मक ढाँचे तथा अधिकार की भूमिका का निर्माण संगठनात्मक नियोजनों के इर्दगिर्द होता है। अभिप्रेरणा, पर्यवेक्षण, नेतृत्व और संचार संबंधी कार्यों की योजनाओं को कार्यान्वित करने तथा संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। प्रबंध नियोजन के अभाव में प्रबंध नियंत्रण का कोई अर्थ नहीं होता। इस प्रकार हम देखते हैं कि नियोजन वह प्रमुख कार्य है जिसके इर्दगिर्द अन्य कार्यों को किया जाता है।

6) **संसाधनों का वितरण** : संगठन के महत्वपूर्ण लक्ष्यों को यथा संभव उपायों से प्राप्त करने के लिए तथा संगठन के महत्वपूर्ण और दुर्लभ साधनों को समुचित ढंग से वितरण के लिए नियोजन एक साधन का काम करता है। महत्वपूर्ण संसाधनों के अंतर्गत धन, अत्यधिक सक्षम प्रबंध, तकनीकमूलक प्रतिभा, सरकार के साथ अच्छा संपर्क, एकमात्र विक्रेता व्यवस्था आदि आते हैं। यदि किसी संगठन के पास ये सभी साधन हैं तब इन साधनों को ऐसे क्षेत्रों के बीच बाँटने के लिए अत्यंत सतर्क योजना की आवश्यकता होती है ताकि प्रतियोगिता की दृष्टि से संगठन की शक्ति बढ़े।

7) **संसाधन उपयोग कुशलता (Resource use efficiency) :** नियोजन किसी संगठन की विभिन्न कार्य–इकाइयों को अधिक कुशलतापूर्ण ढंग से कार्य सम्पादित करने में मदद करता है। संगठन की वर्तमान परिसंपत्तियों, संसाधनों और क्षमताओं का उपयोग बेहतर रूप में होता है। नियोजन प्रबंधकों को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे कमियों व त्रुटियों को दूर करें तथा धन सामग्री, मानव प्रयास और कुशलता की बराबरी से होने वाली हानि कम करें, संसाधनों का प्रभावपूर्ण प्रयोग करें जिससे कुशलता में सुधार आ सके।

8) **अनुकूली–प्रतिक्रिया (Adaptive response) :** नियोजन संगठन की योग्यता बढ़ाने में मदद करता है ताकि यह प्रभावपूर्ण ढंग से बाह्य वातावरण में होने वाले परिवर्तनों के अनुकूल अपने कार्यों की दिशाओं में सामन्जस्य स्थापित कर सके। कोई संगठन अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए रखे इसके लिए आवश्यक होता है कि उसका अनुकूली

व्यवहार हो। उदाहरणार्थ किसी व्यवसाय संगठन का प्रौद्योगिकी, बाजार उत्पाद आदि के संबंध में अनुकूली व्यवहार आवश्यक होता है।

9) **पूर्वकल्पी क्रिया (Anticipative action)** : बाह्य जगत में हुए परिवर्तन के कारण अपने को उसके अनुकूल बनाना एक प्रकार का प्रत्युतर (response) तो है फिर भी कुछ स्थितियों में वह पर्याप्त नहीं होता। इसलिए प्रबंधकों को नियोजन इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे अपना कार्य करें, साहस के साथ पहल करें, संकट और खतरे का पूर्वानुमान लगाएँ और उन्हें दूर करने का प्रयास करें। अपने प्रतियोगियों से पहले ही अवसरों का पता लगाकर उनसे लाभ उठाएँ तथा प्रतिस्पर्धा की दौड़ में उनसे आगे निकल जाएँ। उदाहरणार्थ कुछ उद्यम अपनी नियोजन प्रणाली के अंग के रूप में परिवेश विशेष तंत्र (environmental scanning mechanism) का उपयोग करते हैं। अतः इस प्रकार का उद्यम परिवर्तन की बाह्य शक्तियों से निर्देशित और नियंत्रित करने की स्थिति में हो जाते हैं।

10) **एकीकरण (Integration) :** नियोजन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रबंधकों के विभिन्न निर्णयों और कार्यों में केवल एक समय पर ही नहीं बल्कि एक समयावधि के अन्तर्गत प्रभावपूर्ण एकीकरण लाया जाता है। नियोजन द्वारा बनाए हुए ढाँचे के संदर्भ में ही प्रबंधक संगठन के कार्यों संबंधी प्रमुख निर्णय सुसंगत रूप में लेते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत।

   i) अन्य बातों के साथ–साथ नियोजन से अभिप्राय होता है विकल्पों के बीच से किए जाने वाले कार्य का निर्धारण।

   ii) नियोजन का स्थान अन्य सभी प्रबंध कार्यों के बाद आता है।

   iii) नियोजन भविष्य–उन्मुखी नहीं हो सकता क्योंकि भविष्य सदा ही अनिश्चित होता है।

   iv) नियोजन में औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही तत्व होते हैं।

   v) नियोजन प्रबंध में बहुत बड़ी त्रुटियों की संभावना को कम कर देता है।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

   i) नियोजन .... उद्देश्यों को निर्धारित करने की प्रक्रिया है।

   ii) नियोजन कार्यों के .... और .... प्रबंध तंत्र के भिन्न–भिन्न स्तरों पर भिन्न–भिन्न होते हैं।

   iii) अनौपचारिक नियोजन .... प्रक्रिया से किया जाता है।

   iv) चूंकि नियोजन में कुछ संकल्पनात्मक विश्लेषात्मक कौशल की आवश्यकता पड़ती है। अतः इसे .... प्रक्रिया माना जाता है।

   v) भविष्य की घटनाओं संबंधी धारणाओं और अनुमानों को नियोजन .... के नाम से जाना जाता है।

   vi) योजनाएँ विशिष्ट और अनोखी स्थितियों के लिए बनाई जाती हैं उन्हें .... कहा जाता है।

vii) नियोजन संसाधनों के विवेकपूर्ण .... का साधन है।

viii) नियोजन प्रबंध को .... उत्तेजित (stimulate) करने को प्रेरित करता है।

9.5 नियोजन की सीमाएँ

आपने नियोजन की प्रकृति और महत्व के संबंध में पढ़ा। अब हम इसकी सीमाओं के संबंध में चर्चा करेंगे।

1) **यह कुछ धारणाओं पर आधारित होती है:** नियोजन कुछ ऐसी धारणाओं या आधारिकाओं (assumption and premises) पर आधारित होती है जो संबद्ध भावी घटनाओं और चरों के संभावित व्यवहार के संबंध में पूर्वानुमान से ली जाती है। यदि ये धारणाएँ या आधारिकाएँ सही सिद्ध नहीं हो जाती तो नियोजन का आधार उससे प्रभावित होता है। ऐसा इसलिए कि पूर्वानुमान की क्रिया परिशुद्ध विज्ञान (exact science) नहीं है।

2) **अपूर्ण सूचना** : नियोजन के लिए आवश्यक सूचना प्रायः अपूर्ण होती है। यह समय पर उपलब्ध नहीं होती और उसकी विश्वसनीयता प्रायः संदेहपूर्ण होती है। अनेक स्थितियों में प्रबंधकों को किंचित अज्ञानता के आधार पर नियोजन संबंधी निर्णय लेने होते हैं क्योंकि सूचना प्राप्त होने में कुछ समय लग जाता है और प्राप्त सूचना पूर्णतः विश्वसनीय नहीं होती।

3) **नियंत्रण की कमी** : बाह्य परिवेश के अनेक तत्वों के संबंध में प्रबंधकों को कम ज्ञान होता है तथा उन पर उनका नियंत्रण भी कम ही होता है। बाह्य स्थितियों को नियोजन के अनुशासन के अंतर्गत लाने का प्रायः कोई साधन नहीं होता। संगठनात्मक क्रियाओं एवं योजनाओं पर अनेक बाह्य घटनाओं का प्रभाव पड़ता है जैसे प्राकृतिक विपदाएँ, अचानक हड़तालें होना, सरकार की नीति में परिवर्तन आदि।

4) **बदलते हुए परिवेश के साथ–साथ परिवर्तन में कठिनाई** : बाह्य परिवेश में हो रहे तेजी से परिवर्तन की स्थितियों में नियोजन का कार्य कठिन हो जाता है। कार्यान्वित होने के पूर्व ही योजनाएँ पुरानी तथा असंगत हो जाती हैं। कुछ स्थितियों में तो लचीली योजनाएँ कुछ सहायक भी हो सकती हैं परन्तु संगठनात्मक योजनाओं में लचीलेपन को एक सीमा के अन्दर ही लाया जा सकता है।

5) **सुपरिवर्ती प्रक्रिया (Fluid Process)** : नियोजन वास्तव में इस अर्थ में सुपरिवर्त्ती प्रक्रिया है जो सदैव परिवर्तन की स्थिति में होती है। ऐसा इसलिए होता है कि समय बीतता जाता है और भविष्य के आने के साथ–साथ सूक्ष्म रूप में परिवर्तन होते जाते हैं। भविष्य सदा ही गतिशील लक्ष्य होता है। नियोजन कार्य के लिए भूत, वर्तमान और भविष्य का समाकलित और संयुक्त दृश्य प्रस्तुत करना सरल नहीं होता।

6) **कार्यान्वयन में बिलंब** : चूंकि नियोजन से अभिप्राय होता है कार्य करने के पूर्व सोचना और निर्णय करना। अतः इस कारण कार्य में विलंब भी हो सकता है। चिंतन और निर्णय की प्रक्रिया बौद्धिक कार्य है। अनेक प्रबंधकों के पास इस कार्य के लिए न तो समय होता है और न ही इस संबंध में उनकी रुचि होती है। इसके अतिरिक्त प्रबंधक कार्यान्वयन को और वह भी समय पर कार्यान्वयन को अधिक महत्व देते हैं जिसके लिए अत्यधिक सक्रियता और गतिकता की आवश्यकता होती है।

7) **अनम्यता (Rigidity)** : नियोजन की प्रक्रिया से बनाई गई योजना संगठन की कार्यप्रणाली में अनम्यता ला देती है। प्रबंधक पूर्वनिर्धारित योजना के सख्ती से पालन करने पर जोर दे सकते हैं। कभी–कभी इसका अर्थ यह हो सकता है कि नए अवसरों और बेहतर विकल्पों को छोड़ दिया जाए। योजना का सख्ती से पालन का अर्थ हो सकता है कि सुनिश्चित क्रम से आगे पहल न की जाए।

8) **योजना केवल कागजी रह सकती है** : दूसरी ओर यह भी संभव है कि योजना ऐसी कागजी वस्तु मात्र बनकर रह जाए जिसका सम्मान किया जाता है तथा जिसे सुरक्षित रखा जाता है, परन्तु उसका न तो पालन किया जाता है और न ही उसे कार्यान्वित किया जाता है। ऐसी योजनाएँ वास्तविकता से इतनी दूर होती हैं कि प्रबंधक इन्हें "अस्पृश्य" (untouchables) मानने लगते हैं। इसके विपरीत प्रबंधक नाजुक स्थितियों से निपटने में इस प्रकार उलझे रहते हैं कि सुनियोजित मार्ग पर चलने का इन्हें समय नहीं मिल पाता।

9) **इकाई के स्तर पर कार्यान्वित करना कठिन है** : कंपनी के स्तर पर व्यापक योजनाओं को बनाना तो सरल है परन्तु कठिनाई तब आ सकती है जब प्रबंधक इकाइयों के स्तर पर इसे कार्यान्वित करने के लिए वस्तुओं और वित्तीय रूप में विस्तृत योजना बनाने लगते हैं। विस्तुत योजना यदि बनाई भी जाती है तो भी वह व्यापक योजना के उद्देश्यों को संगत (consistent) रूप में प्रतिबिम्बित नहीं भी कर सकती है।

9.6 नियोजन की प्रक्रिया

पहले बताया जा चुका है कि नियोजन ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कुछ चरण (steps) या क्रमिक क्रियाएँ होती हैं। नियोजन प्रक्रिया के लिए प्रायः कोई निर्धारित या मानक नमूना नहीं होता। विभिन्न लेखकों ने अपने ही अनुसार नियोजन प्रक्रिया की संकल्पना दी है। अब हम नियोजन प्रक्रिया की संकल्पनात्मक योजना का वर्णन करते हैं।

1) **नियोजन की योजना** : नियोजन अपने आप नहीं बन जाता है, मुख्य प्रबंधक के आदेश से इसके संबंध में निर्णय ठीक प्रकार से और सावधानीपूर्वक लेना होता है और इसी प्रकार योजना भी बनानी होती है। संगठन के प्रबंधक के लिए आवश्यक होता है कि वह प्रबंधक के प्रत्येक स्तर के व्यक्तियों के बीच नियोजन की अनिवार्यता और गुणों तथा इसमें सन्निहित दर्शन और तकनीकों को उजागर करके उनमें नियोजन की संस्कृति लाए। नियोजन की कार्यप्रणाली के संबंध में प्रशिक्षण प्रोग्रामों और सम्मेलनों का आयोजन करके प्रबंधकों को शिक्षित करना होता है ताकि योजना को कार्यान्वित करने के संबंध में वे और अधिक सक्षम बन सकें। आवश्यक नियोजन प्रणाली को तैयार करके उसे सक्रिय करना होता है। नए संगठनों के संबंध में ऐसा करना और भी आवश्यक होता है।

2) **आंतरिक स्थिति का मूल्यांकन** : इस चरण में मुख्य प्रबंधकों को अन्य प्रबंधकों के सहयोग से संगठन की वर्तमान स्थितियों अर्थात् इसकी वर्तमान योजनाओं, प्रक्रियाओं, कार्यों, कार्य निष्पादन स्तरों, उपलब्धियों तथा समस्याओं का विश्लेषण करना होता है। संगठन के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत उसकी विशिष्ट शक्तियों और कमजोरियों के संबंध में विस्तारपूर्वक पुनर्विचार करना आवश्यक होता है। जैसे कि इसके द्वारा पूर्ति किए जाने वाले माल एवं सेवाएँ, वित्तीय स्थिति, मानव संसाधन और प्रबंधक संसाधन, प्रतिस्पर्धी स्थिति, लाभ–स्तर, बाजार–छवि, विनिर्माण और अन्य सुविधाएँ, अनुसंधान और विकास (R&D) लाभ, पूंजी ढाँचा आदि। प्रबंधक वर्ग को उपर्युक्त

क्षेत्रों में संगठन के कार्यों की भावी स्थिति और दिशाओं के संबंध में पूर्वानुमान भी करना होता है तथा उनके संबंध में खाका भी बनाना होता है।

3) **बाह्य स्थिति का मूल्यांकन** : संगठन का उच्च प्रबंधक नियोजन प्रक्रिया हेतु वातावरण के विश्लेषण से महत्वपूर्ण रूप से सम्बन्धित होता है। इससे उन्हें संगठन के बाहर के उन तत्वों और घटनाओं को समझने में सुविधा हो जाती है जो इसके वर्तमान और भावी कार्य संचालन पर प्रभाव डालते हैं। संगठन के आर्थिक, सामाजिक, प्रौद्योगिकीय आदि साधनों में परिवेश संबंधी प्रवृत्तियों के मूल्यांकन की प्रक्रिया का निरंतर होना आवश्यक होता है। वर्तमान ही नहीं बल्कि संभावित भावी प्रवृत्तियों का मूल्यांकन विधिपूर्वक परीक्षण और पूर्वानुमान तंत्र के द्वारा करना होता है। इस प्रकार संगठन वर्तमान और भावी अवसरों को तथा विभिन्न बाह्य तत्वों के खतरों की पहचान कर पाता है जिसके साथ उसका प्रत्यक्ष रूप से संबंध होता है।

4) **नियोजन के प्रमुख क्षेत्रों और विषयों की परिभाषा** : आंतरिक और बाह्य वातावरण संबंधी स्थितियों के मूल्यांकन से प्रबंधक वर्ग यह जानने की स्थिति में हो जाता है कि संगठन को किस प्रकार की अस्थायी नियोजन की आवश्यकता है। प्रबंधकों को अपने आप से यह प्रश्न पूछना होता है कि बाह्य मूल्यांकन की दृष्टि से क्या वर्तमान व्यवसाय, उत्पाद, बाजार, प्रक्रियाएँ तथा पद्धतियाँ संगत हैं और इनमें से किस पक्ष को कायम रखना, सशक्त बनाना, सही करना तथा संशोधित करना है। विश्लेषण से यह भी पता चल सकता है कि संगठन की प्रतिस्पर्धी स्थिति को मजबूत बनाने तथा संगठन और बाह्य वातावरण के बीच संबंध को बेहतर बनाने के लिए नई दिशा देने की आवश्यकता है। इसके फलस्वरूप नए व्यवसायी, नई प्रौद्योगिकियों, नए उत्पादों और नए बाजारों की भी संभावना होगी। उपर्युक्त मूल्यांकन का प्रमुख परिणाम होता है नए संभावित उपायों की पहचान जो उन वातावरणीय सुविधाओं और खतरों के लिए आवश्यक होते हैं जो संगठन के कार्यों और प्रगति में सहायक होते हैं या उनमें बाधा डालते हैं।

5) **मूल्यांकन और चुनाव के लिए विकल्पी योजनाओं का विकास** : इस स्थिति में नियोजन की आवश्यकताओं के अनुमान के आधार पर प्रबंधकों को अपने सर्जनात्मक और नए कौशलों का उपयोग करना होता है जिससे विकल्पी योजनाएँ बनाई जा सकें। ऐसी योजना के अंतर्गत आते हैं कार्य उद्देश्य, विधियाँ, नीतियाँ और कार्यक्रम। ये प्रायः निगम व्यापी होती है और परिस्थितियों के अनुसार इनका स्वरूप दीर्घकालिक होता है, जैसे 5 से 10 वर्ष का। विकल्पी योजनाओं के विकास के लिए प्रबंधकों को अत्यंत चितन और खोज करना होता है। उदाहरणार्थ अपनी आर्थिक शक्ति और लाभ बढ़ाने के लिए व्यावसायिक उद्यमों के सम्मुख अनेक विकल्प होते हैं। वर्तमान बाजारों में अपने उत्पादों की बिक्री में वृद्धि, नए बाजारों की तलाश, किसी अन्य वस्तु का उत्पादन, किसी अन्य उद्यम को अपने अधीन करना आदि। कोई उद्यम उपर्युक्त विकल्पी विधियों में से किसी एक या अनेक के संयोजन के द्वारा अपनी आर्थिक शक्ति को बढ़ा सकता है।

इस अवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है विकल्पी योजनाओं के संदर्भ में उनके तुलनात्मक गुणों और दोषों का मूल्यांकन जिसके बाद कुछ पूर्वनिर्धारित मापदंडों के आधार पर सही विकल्पों का चयन करना होता है। ये चयन प्रबंधकों के निर्णय होते हैं जो किसी संगठन के मार्ग का एक विशिष्ट अवधि तक निदेशन करते हैं।

6) **मध्यकालिक तथा अल्पकालिक योजनाओं का निर्माण** : संगठनात्मक योजनाओं का

दीर्घकालीन सेट विशिष्ट प्रकार के मध्यकालिक तथा अल्पकालिक योजनाओं के निर्माण हेतु आधार प्रदान करता है। मध्यकालिक योजनाओं की अवधि प्रायः एक वर्ष से अधिक और तीन वर्षों तक की होती है। अल्पकालिक योजनाओं की अवधि एक वर्ष या उससे कम की होती है। मध्यकालिक तथा अल्पकालिक योजनाएँ दीर्घकालिक योजनाओं से क्रमशः अधिक विशिष्ट प्रकार की होती है। अल्पकालिक योजनाओं को संक्रियात्मक योजना भी कहा जाता है और उनके निर्माण की प्रक्रिया को संक्रियात्मक नियोजन (operational planning) कहा जाता है। मध्यकालिक और अल्पकालिक योजनाएँ प्रायः विनिर्माण, विपणन, क्रय कर्मचारी वर्ग, वित्त, अनुसंधान और विकास (R&D) आदि क्षेत्रों में बनाई जाती हैं। फिर इनका विभाजन अनुभागीय और एकक योजनाओं में किया जाता है जो संगठन की मूल इकाइयों के प्रचालन हेतु वैध होता है।

7) **योजना को कार्यान्वित करने की व्यवस्था :** योजनाओं को कारगर ढंग से कार्यान्वित करना योजना प्रक्रिया की सबसे कठिन समस्या है। चूंकि योजनाओं को कार्यान्वित करने का भार प्रबंधकों तथा अनेक स्तरों पर काम करने वाले अन्य व्यक्तियों पर होता है। अतः मुख्य प्रबंधक वर्ग के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह इस कार्य के लिए उनका सहयोग, सहभागिता तथा प्रतिबद्धता प्राप्त करें। योजनाओं को कार्यान्वित करने, संसाधनों संचार प्रणाली को सक्रिय बनाने आदि कार्य के लिए विभिन्न प्रबंधकों के बीच अधिकार और उत्तरदायित्व को निश्चित करना आवश्यक हो जाता है।

बोध प्रश्न 2

1) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

   i) नियोजन के लिए आवश्यक सूचना प्रायः .... होती है और वह .... नहीं भी हो सकती।

   ii) नियोजन की सीमाओं में से एक यह है कि यह अनिवार्य रूप से .... प्रक्रिया होती है।

   iii) बाहरी .... का मूल्यांकन नियोजन प्रक्रिया के लिए अत्यन्त .... आवश्यक होता है।

   iv) पूर्वानुमान से प्रबंधकों को भावी समस्याओं और प्रत्याशाओं के संबंध में अत्यंत प्राप्त होते हैं।

   v) भविष्य में होने वाला अनुमानित विक्रय किसी कंपनी के प्रबंधकों के लिए .... आधारिका है।

2) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत ?

   i) नियोजन के कारण विलंब होता है क्योंकि इसके संबंध में पहले से सोचने–विचारने की आवश्यकता होती है।

   ii) विकल्पी योजनाओं का विकास कार्य स्तर पर योजना के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है।

   iii) नियोजन के लिए पूर्वानुमान करना और आधारिका बनाना एक ही वस्तु हैं।

   iv) नियोजन आधारिकाएँ तथा पूर्वानुमान भविष्य की अनिश्चितताओं और जटिलताओं को कम कर देते हैं।

v) मध्यकालिक योजनाएँ एक वर्ष से अधिक अवधि की होती हैं।

9.7 नियोजन के प्रकार

कुछ चरों के आधार पर नियोजन का विभाजन कई वर्गों में किया जा सकता है। यहाँ पर हम व्यापकता की मात्रा और समय अवधि नामक दो चरों के आधार पर नियोजन कार्य को चार वर्गों में बाँटेंगे। व्यापकता के आधार पर नियोजन को सामरिक नियोजन और युक्ति नियोजन के बीच बाँटा जाता है और समय अवधि के आधार पर इसे दीर्घकालीन नियोजन और अल्पकालीन नियोजन के बीच बाँटा जा सकता है। अब हम इन चार प्रकार की नियोजनों के संबंध में चर्चा करेंगे।

सामरिक नियोजन (strategic planning) : सामरिक नियोजन से अभिप्राय होता है एकीकृत संगठन के निर्धारण की प्रक्रिया अर्थात् संगठन के मुख्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले अनेक उपाय। यह शब्द सैन्य विज्ञान से लिया गया है जहाँ पर इसका उपयोग देश की रक्षा करने और शत्रु सेना को पराजित करने के सैनिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सैनिक अभियान की प्रक्रिया के संदर्भ में किया जाता है। सेना की बोलचाल की भाषा में सामरिक नियोजन के अंतर्गत जो पक्ष आते हैं वे हैं शत्रु पर किस प्रकार और कितनी ओर से आक्रमण किया जाए, भू–सेना, वायुसेना और नौसेना का आकार और संयोजन, उपयोग में लाए जाने वाले साधनों की मात्रा, विभिन्न गतिविधियों का उचित समय, मोर्चाबंदी तथा रक्षा किए जाने वाले क्षेत्र आदि यह शब्द अब गैर सैनिक क्षेत्रों में भी काफी महत्वपूर्ण हो गया है। राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्यों को प्राप्त करने की युक्ति, गाँवों में पेय जल की समस्या को समाधान की युक्ति, जनसंख्या दर में वृद्धि को रोकने की युक्ति आदि शब्द अक्सर ही सुनने में आते हैं। व्यावसायिक उद्यमों के संदर्भ में सामरिक नियोजन के अंतर्गत उन युक्तियों का निर्माण आता है जो वातावरण में प्रतिस्पर्धी तथा अन्य बाह्य शक्तियों पर काबू करने के लिए की जाती हैं। इसके अंतर्गत उन प्रमुख उपायों और गतिविधियों को अस्थायी रूप से बनाना होता है जो उद्यम की शक्ति और अशक्तता के संदर्भ में अवसरों का पता लगाने और उनसे लाभ उठाने तथा खतरों और प्रतिबंधों का सामना करने के लिए आवश्यक होती है।

उद्यम के शीर्षस्थ प्रबंधक वर्ग के सामने जो प्रश्न उपस्थित होते हैं और सामरिक नियोजन में उन्हें जिनका उत्तर मिलता है वे हैः कौन से अत्यंत महत्वपूर्ण बाजार तथा अन्य अवसर हैं और उद्यम के साथ उनका किस प्रकार से संबंध है ? उद्यम के चलते किस प्रकार और कितनी जटिल बाहरी समस्याएँ, खतरे और प्रतिबंध उपस्थित होते हैं ? इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उद्यम अवसरों का लाभ कैसे उठाता है तथा खतरों और प्रतिबंधों का सामना किस प्रकार से करता है (उदाहरणार्थ विरोधी उद्यम द्वारा की गई कीमत कटौती, आक्रमण विज्ञापन अभियान, नए और उत्कृष्ट प्रकार के उत्पादों का प्रस्तुतीकरण आदि) ? किन विशिष्ट क्षेत्रों और व्यवसायों में अपने प्रभुत्व को जमाने और उसे कायम रखने का प्रयास उद्यम ने किया ? किसी उद्यम को अपने कार्यों का विस्तार किन नए व्यवसायों में करना चाहिए ?

सामरिक नियोजन उद्योग के अन्य वर्तमान और संभावी प्रतिद्वंदी के मुकाबले में उद्यम के प्रतिस्पर्धी स्थिति में सुधार लाने का एक साधन है। यह एक कार्य योजना (action plan) है जिसके अंतर्गत उद्यम के महत्वपूर्ण संसाधनों (निवेश–राशि, ग्राहक की साख और निष्ठा, वितरण व्यवस्था, अनुसंधान और विकास सुविधाएँ आदि) का उपयोग कैसे, कहाँ और कब किया जाए तथा संवृद्धि, विविधीकरण, अधिक लाभ, प्रतिस्पर्धी शक्ति और अच्छे बाजार

संबंधी उद्यम के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रमुख निर्णयों और पहले के संयोजन, क्रम और समय क्या हो, आते हैं।

युक्तिपूर्ण नियोजन (Tactical planning) : युक्तिपूर्ण नियोजन से अभिप्राय होता है उद्यम की युक्तियों को कार्यान्वित करने के लिए अधिक स्पष्ट और कार्यात्मक उपयोजनाओं के निर्माण की प्रक्रिया। इस नियोजन का क्षेत्र अधिक सीमित होता है और इसके अंतर्गत ऐसे विस्तृत निर्णय और कार्य आते हैं जिनकी शुरुआत निचले स्तर के प्रबंधकों द्वारा इसलिए की जाती है कि उपयुक्त स्थिति के आने पर उससे लाभ उठाया जाए तथा स्थानीय और प्रचालन संबंधी समस्याओं से निपटा जाए। इसका स्वरूप उपनिगमीय प्रकार का होता है। युक्तिपूर्ण नियोजन छोटे–छोटे तथा क्रमिक चरणों का रूप लेता है या ऐसी गतिविधियाँ जो सम्मिलित रूप में ली जाती हैं। युक्तिपूर्ण निर्णयों का संबंध जिनके साथ होता है वे हैं कौन से कार्य और किस प्रकार किए जाएँ, कौन से कार्य मापदंड बनाए जाएँ, संसाधनों का उपयोग कुशलतापूर्वक कैसे किया जाए, आदि। युक्तिपूर्ण नियोजन का कार्यान्वयन सामरिक नियोजन की अपेक्षा अधिक सूचना के आधार पर कम जोखिम वाली स्थितियों में तथा अधिक निर्मित विधियों द्वारा किया जाता है। युक्तिपूर्ण नियोजन विभिन्न कार्यों का विस्तृत रूप में विशेष विवरण का आधार तैयार करता है जिसका पालन उद्यम समन्वित और समयबद्ध आधार पर करते हैं।

एक उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकता है। मान लें कि उद्योग–वस्तुओं का निर्माण करने वाले उद्यम के प्रमुख प्रबंधक वर्ग का मुख्य लक्ष्य अगले चार वर्षों में बिक्री की मात्रा को दुगुना करके उद्यम में बड़ी तेजी से संवृद्धि लाना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह उद्यम जिन युक्तियों को काम में लाता है उनमें एक है उपभोक्ता वस्तुओं के विनिर्माण में विशिष्टिकरण को लाना। इस युक्ति को कार्यान्वित करने के लिए इस उद्यम ने ''बनाओ या खरीदो'' आंतरिक संवृद्धि बनाम अधिकरण या विलयन (internal growth or acquisitions or mergers) विदेशी सहयोग आदि के संबंध में विशेष नीतियों को बनाती हैं। उपर्युक्त युक्तियों और नीतियों के ढाँचे के अंतर्गत प्रचालन के आकार, उत्पाद के प्रकार, किस्में, ग्राहक सेवा, वितरण माध्यम आदि पक्षों के संबंध में युक्तिपूर्ण योजना बनाई जानी है और निर्णय लिए जाते हैं।

सामरिक नियोजन और युक्तिपूर्ण नियोजन के बीच का अंतर क्षेत्र और प्रभाव से संबंधित होता है। कई बार तो ये दोनों ही प्रकार के नियोजन एक जैसे ही लगते हैं। फिर भी ये एक दूसरे पर निर्भर होते हैं।

दीर्घकालिक नियोजन : दीर्घकालिक नियोजन शब्द से अभिप्राय होता है संगठन के दीर्घकालिक लक्ष्यों को बनाने की प्रक्रिया और ऐसे लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए साधनों (ways and means) का निर्धारण। ''दीर्घकाल" शब्द से आशय होता है भावी समय का विस्तार तथा ऐसी लम्बी अवधि जिसकी कल्पना कोई संगठन अस्थायी लक्ष्य के रूप में कर सके। दीर्घकाल की अवधि और सीमा अलग–अलग उद्यमों तथा स्थितियों में अलग–अलग होती है। कुछ उद्योगों के लिए 3–5 वर्ष का समय काफी लम्बा समय माना जाता है जबकि कुछ अन्य के लिए 25–30 वर्ष या उससे भी लम्बी अवधि की योजना के लिए आवश्यक माना जाता है। योजना की दीर्घ अवधि का निर्धारण उद्यम के व्यवसाय का स्वरूप, उसका आकार और संवृद्धि दर, वातावरण में परिवर्तनशीलता की मात्रा, प्रमुख निर्णयों को कार्य रूप देने के लिए आवश्यक समय आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है।

दीर्घकालिक नियोजन उद्यम की परिसंपत्तियों या बिक्री और लाभप्रदता की वांछित संवृद्धि दर, भविष्य में नए कार्य, प्रमुख नए निवेश, विकास के क्षेत्र और विनिवेश जैसे महत्वपूर्ण

लक्ष्यों के निर्धारण के लिए ढाँचा प्रस्तुत करता है। जैसा कि पीटर डकर ने कहा है जटिल और गतिक प्रकार के बाह्य परिवेशों के संदर्भ में प्रत्येक उद्यम को अपने आपसे ऐसे और इस प्रकार के प्रश्न पूछने चाहिए। व्यवसाय तथा अन्य संगठन यह आशा नहीं कर सकते कि उनके आज के व्यवसाय, उत्पादन–धंधे और कार्य, प्रौद्योगिकी, लाभ स्तर और बाजार भविष्य में भी संगत बने रहेगें। दीर्घकालिक नियोजन का उद्देश्य इस प्रकार की सजगता लाना और प्रबंधकों को इस योग्य बनाना होता है कि वे प्रमुख निर्णयों को लेते समय भविष्य पर भी नजर रखें।

अल्पकालिक नियोजन : अल्पकालिक नियोजन से अभिप्राय होता है अल्पकालिक लक्ष्यों के निर्माण की प्रक्रिया और उन कार्यों या योजनाओं के संबंध में निर्णय लेना जिनसे उन लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है। अल्पकालिक नियोजन एक वर्ष या उससे कम की अवधि के लिए बनाया जाता है। आमतौर पर इसे दीर्घकालिक नियोजन के ढाँचे के ही अंतर्गत तथा दीर्घकालिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए क्रमशः चलाया जाता है। अल्पकालिक नियोजन दीर्घकालिक नियोजन को सुसम्बद्ध और व्यवहार्य कार्यक्रमों के रूप में बांटने का प्रयास करता है। अल्पकालिक नियोजन अधिक कार्य उन्मुखी, अधिक विस्तुत, विशिष्ट और मात्रात्मक होता है। उदाहरणार्थ किसी उद्यम का दीर्घकालिक लक्ष्य यदि अगले 5 वर्षों में बिक्री की मात्रा में 50% की वृद्धि करना है तब अगले वर्ष के लिए उसे ऐसी अल्पकालिक योजना बनानी होगी कि उसकी कुल बिक्री में 20% की वृद्धि हो। इस कार्य के लिए उसे विस्तृत बजट का निर्माण करना होगा जिसमें अल्पकालिक लक्ष्य, निष्पादन लक्ष्य, क्रियाएँ तथा समयबद्ध ढ़ंग से संसाधनों के वितरण, कार्यों के निर्धारण, समुचित योजना की रूपरेखा, कार्यान्वयन और प्रोग्राम मूल्यांकन प्रणाली के लिए आधार की व्यवस्था करता हो। इस प्रकार दीर्घकालिक नियोजनों का कार्यान्वयन बजट और अनुसूची बनाने के प्रयासों और संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक कार्यों के लिए किया जाता है।

यह ध्यान देने की बात है कि युक्तिपूर्ण नियोजन और अल्पकालिक नियोजन को संक्रियात्मक नियोजन (operational planning) भी कहा जाता है क्योंकि वे मध्यम और पर्यवेक्षण स्तर पर निम्न स्तर के प्रबंधकों के विस्तृत प्रचालनों की योजना का प्रतिनिधित्व करते हैं।

9.8 नियोजन के सिद्धांत

चूंकि नियोजन प्रबंध का कार्य है, अतः इसे कुछ सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए जिससे उपक्रम का मार्ग निदेशन सही ढ़ंग से हो सके। योजना के सिद्धांतों को नीचे दिया जा रहा है।

1) **शीर्षस्थ प्रबंधक वर्ग की रुचि का सिद्धांत** : संगठन के मुख्य कार्यपालक (chief Executive) को योजना में रुचि होनी चाहिए, उसे योजना की सीमाओं के अंतर्गत कार्य करना चाहिए और अपने अधीन व्यक्तियों में भी इसी प्रकार की भावना लानी चाहिए।

2) **दीर्घकालिक दृष्टिकोण का सिद्धांत** : सभी प्रबंधकों को चाहिए कि वे निर्णय लेने के पूर्व उसके दीर्घकालीन भावी परिणाम के संबंध में भली भांति विश्लेषण कर लें तथा सभी तथ्यों के संबंध में सोच–विचार कर लें।

3) **लक्ष्यों में योगदान का सिद्धांत** : योजना को उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए। संगठन के लक्ष्यों या वांछित परिणामों को प्राप्त करने के प्रति इसका प्रत्यक्ष योगदान होना चाहिए।

4) **योजना की प्रमुखता का सिद्धांत** : जैसा कि पहले बताया जा चुका है, प्रबंध प्रक्रिया में योजना का प्रमुख स्थान होता है। इसे प्रबंधकों का प्रथम कार्य माना जाता है जिससे अन्य सभी कार्यों की शुरुआत होती है।

5) **लचीलेपन (flexibility) का सिद्धांत** : इस सिद्धांत से पता चलता है कि योजना के लचीले होने से बाह्य घटनाओं में तीव्र और अनपेक्षित (rapid and unforeseen) परिवर्तनों का सामना करने में संगठन को मदद मिलती है। पूर्व निर्धारित योजनाओं को छोड़े बिना या प्रतिकूल परिणामों का सामना किए बिना ही इसे प्राप्त किया जा सकता है।

6) **मार्ग–निर्देश परिवर्तन का सिद्धांत** : इस सिद्धांत का संबंध लचीलेपन के सिद्धांत के साथ होता है। यह बताता है कि योजनाओं के पुनर्विलोकन तथा संशोधन (review and revision) के साथ ही साथ बाह्य घटनाओं की दिशा में निर्देशन की प्रक्रिया भी नियमित रूप से चलनी चाहिए जिससे वांछित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। यह कार्य वैसा ही है जैसे कि कोई नौचालक (navigator) जलधारा के प्रवाह के अनुकूल अपने जहाज के मार्ग को बदल लेता है।

7) **प्रतिबद्धता का सिद्धांत** : यह सिद्धांत योजना अवधि के निर्धारण में सहायक होता है। योजना के लिए उतनी अवधि आवश्यक होती है जो निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हो। उदाहरणार्थ कोई छात्र यदि बी. काम. (आनर्स) करने का निर्णय लेता है तो उसका योजनाकाल तीन वर्ष का होगा।

8) **प्रतिबंधक कारक का सिद्धांत (limiting factor)** : प्रतिबंधक कारक उसे कहते हैं जो वांछित लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक सिद्ध होता है। जो कारक लक्ष्यों की प्राप्ति के मार्ग में बाधक सिद्ध होते हैं उन्हें दूर करने के प्रति प्रबंधकों को समुचित ध्यान देना चाहिए।

9.9 निर्णय लेना

प्रत्येक व्यक्ति जीवन में निर्णय लेता है। आपको बी.कॉम प्रोग्राम में नामांकन लेना है। इस कार्य के लिए आपको यह निर्णय लेना होगा कि किस विषय को आप चुनें, किस कॉलेज या विश्वविद्यालय में नामांकन कराएँ, किस पेशा में आप पढ़ाई करना चाहते हैं आदि। इसी प्रकार एक प्रबंधक को प्रबंधन के सभी क्षेत्रों जैसे योजना बनाना, संगठन, निर्देशन, समन्वयन, नियंत्रण की सफलता उसके प्रबंधक द्वारा सही गुणवत्तार्पूण निर्णय लेने पर निर्भर करता है।

प्रबंध के प्रमुख विशेषज्ञ पीटर ड्रकर ने निर्णय को इस प्रकार परिभाषित किया है। ''निर्णय एक चुनने की प्रक्रिया है जिसमें कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति में निष्कर्ष तक पहुँचता है।'' इसमें व्यवहार के कार्यवाही की प्रक्रिया शामिल होता है जिसमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए के बारे में होता हैं। मैक फारलैण्ड निर्णय को इस प्रकार परिभाषित किया है। ''निर्णय चयन की एक प्रक्रिया है जिसमें कोई कार्यकारी अधिकारी किसी परिस्थिति में क्या करना चाहिए इसके निष्कर्ष पर पहुँचता है। निर्णय विभिन्न विकल्पों में से एक को चुनने की प्रक्रिया को दर्शाता है।''

उपर्युक्त परिभाषा यह दर्शाता है कि :

i) **निर्णय एक चयन की प्रक्रिया है :** इसका आशय यह है कि समाधान के लिए एक समस्या या मुद्दा हो सकता है। एक प्रबंधक के रूप में निर्णय के विभिन्न कार्यकलापों को ध्यान में रखते हुए आपको एक क्रिया का चयन करना होता है।

ii) **सम्भावित विकल्प :** किसी समस्या के समाधान को प्राप्त करने के लिए विभिन्न तरीके हो सकते हैं। आपको निर्णय लेने के लिए संभावित तरीका का पता लगाना और परीक्षण करना होता है।

iii) **निष्कर्ष :** आपको सबसे अच्छा विकल्प का चयन करना होता है। इस प्रकार आप सबसे अच्छा विकल्प को चुनकर निर्णय के निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

इस प्रकार निर्णय का केन्द्रीय कार्य विकल्पों में से चुनाव करना होता है।

निर्णय लेने की प्रक्रिया

निर्णय लेने की प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण होते हैं।

1) **समस्या या अवसर का पता लगाना :** जैसे ही आप अपना करियर का लक्ष्य निर्धारित कर लेते हैं तो उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते हैं। उसी प्रकार प्रबंधक अपने संगठन का लक्ष्य निर्धारित करता है। वह लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। लक्ष्य को प्राप्त करने को प्रभावित करने वाले बहुत से आंतरिक और बाह्य कारक होते हैं। प्रबंधक को संगठन के संबंधित सही समस्या या अवसर का पता लगाना होता है।

   स्टोनर, फ्रीमैन और मिलबर्ट, 2000 के पुस्तक में डेविड की ग्लेचर, एक प्रबंध परामर्शदाता ने उल्लेख किया है कि ''समस्या किसी संगठन से लक्ष्य प्राप्त करने में संकटग्रस्त करता है। और अवसर उद्देश्यों से अधिक प्राप्त करने का मौका प्रदान करता है।'' इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि समस्या वाधा उत्पन्न करता है, अवसर किसी संगठन को आगे बढ़ने का मौका प्रदान करता है। उदाहरण के लिए वातावरण अनुकूल वस्तु का कैसे उत्पादन किया जाय, यह प्रबंधक के लिए एक समस्या हो सकता है। उत्पादक इकाई का फिर से डिजाइन करना वातावरण अनुकूल वस्तुओं के बढ़ते हुए बाजार को कब्जा करने के लिए अवसर प्रदान करता है। इसलिए समस्या और समाधान को अच्छी तरह परिभाषित करना पड़ता है।

2) **संभावित विकल्पों को खोजना :** इस चरण में प्रबंधक समस्या के समाधान का विभिन्न विकल्पों को खोजता है। उदाहरण के लिए यदि किसी कंपनी का विक्रय घट रहा है तो उसे विक्रय घटने के कारणों के निदान का पता लगाना चाहिए। विक्रय का घटना आंतरिक कारकों से हो रहा है या बाह्य कारकों से, उसी प्रकार यदि प्रबंधक नया बाज़ार पर कब्जा करना चाहता है तो उसे इसका निदान ढूँढ़ना होगा कि नए बाजार में प्रवेश करने के लिए उत्पादन के कारकों का प्रबंधन किस प्रकार किया जाना है। इसके लिए उसे सभी आंतरिक और बाहय कारकों का पता लगाना होता है।

3) **विकल्पों का मूल्यांकनः** इस चरण में प्रबंधक को सभी विकल्पों का मूल्यांकन करना पड़ता है। वह प्रत्येक विकल्प का सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं का परीक्षण करता है। यदि किसी पहलू में सकारात्मक बिन्दु ज्यादा होता है तो वह समझता है कि यह विकल्प संगठन के लिए उपयुक्त है। उपलब्ध संसाधनों के आधार पर वह परीक्षण करता है कि फर्म के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए दुर्लभ साधनों का सबसे अच्छा उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है।

4) **सबसे अच्छा विकल्प का चयन** : विकल्पों के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं का मूल्यांकन करने के बाद वह अपने संगठन के लिए सबसे अच्छा विकल्प का चयन करता है। पीटर ड्रकर ने किसी कार्य के निष्पादन के चयन के लिए निम्नलिखित चार मानदंडों का सुझाव दिया है।

   i) **जोखिम** : जोखिम का अर्य खतरा, भय, नुकसान आदि से है। किसी कार्य में उपस्थित जोखिम के आधार पर प्रबंधक को स्थिति का आकलन करना पड़ता है। उसे जोखिम को कम करने के लिए सोचना पड़ता है। यह सफलता के संभावना में सहायता प्रदान करता है।

   ii) **प्रयास का मितव्यता**: जैसा कि आप जानते हैं कि संसाधनें सीमित हैं। इसलिए उत्पादक के कारकों का इस प्रकार उपयोग करना चाहिए ताकि उससे सबसे अच्छा परिणाम मिले। सभी क्रियाओं का प्रबन्धन इस प्रकार से किया जाना चाहिए ताकि कम प्रयास करके आपको बहुत अच्छा परिणाम मिलना चाहिए। संसाधनों के उपयोग, प्रक्रमण, समय आदि के संबंध में मितव्यता होनी चाहिए। मितव्यता का प्रबंध किसी उद्यम के सफलता में सहायक होता है।

   iii) **परिस्थिति या समय** : आपने सुना होगा कि सही निर्णय सही समय में लेना चाहिए। उदाहरण के लिए ऊनी कपड़े का मांग शर्दियों में होता है। इसलिए ऊनी कपड़ों का उत्पादन और वितरण के संबंध में निर्णय इस तरह से लेने चाहिए कि बाजार में ऊनी कपड़ों को शर्दियों में उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

   iv) **संसाधनों का सीमित होना** : जैसा कि आप जानते हैं कि संसाधनें सीमित होते हैं। इसलिए आपको संसाधनों का इस प्रकार से उपयोग करना चाहिए ताकि उससे आपको सबसे अच्छा परिणाम मिले। प्रबंधक को प्रत्येक स्तर पर अच्छा परिणाम प्राप्त करने के लिए अपव्यय कम करना चाहिए और उत्पादकता बढ़ाना चाहिए। यदि प्रबंधक उपर दिए गए मानदंड को सूक्ष्म तरीके से परीक्षण करता है तो वह अपने संगठन के लिए संभावित विकल्पों में से सबसे अच्छा विकल्प का चयन कर सकता है।

5) **निर्णय का क्रियान्वयन**: सबसे अच्छा प्रक्रिया का चयन करने के बाद प्रबंधक को इस निर्णय को अपने संगठन में क्रियान्वयन करवाना होता है। क्रियान्वयन को सुविधाजनक बनाने के लिए और प्रतिरोध को कम करने के लिए प्रबंधक को संबंधित हित धारकों को निर्णय के सकारात्मक पहलुओं के बारे में राजी करना पड़ता है। यदि निर्णय के सभी पार्टी राजी हो जाते हैं तो निर्णय के क्रियान्वयन में सहायता मिलती है। प्रबंधक को लिए गए निर्णय को अच्छी तरह से क्रियान्वयन के लिए प्रयास करना चाहिए।

6) **आगे की कार्यवाही करना** : निर्णय के क्रियान्वयन के परिणाम को बार–बार परीक्षण करना चाहिए। अच्छा परिणाम दूसरे सम्बन्धित समस्याओं को हल करने के लिए विचार किया जा सकता है। नकारात्मक परिणाम को किसी कार्य को सुधारने के लिए विचार किया जा सकता है। इस प्रकार प्रबंधक को प्रतिपुष्टि लेना पड़ता है जिससे हमेशा प्रगति और सुधार होता रहे।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत है ?

   i) सामरिक योजना के अंतर्गत समस्त संगठन के लिए युक्तियों को बनाने का काम आता है।

   ii) युक्तिपूर्ण नियोजन सामरिक नियोजन की तुलना में अधिक जोखिम वाली स्थितियों में कार्यान्वित किया जाता है।

   iii) संक्रियात्मक नियोजन के अंतर्गत दीर्घकालिक तथा अल्पकालिक ये दोनों ही प्रकार के नियोजन आते हैं।

   iv) नियोजन के लचीलेपन के सिद्धांत से यह पता चलता है कि जितनी बार हो सके उतनी बार योजनाओं में परिवर्तन किया जाना चाहिए।

   v) प्रतिबद्धता का सिद्धांत योजना अवधि के निर्धारण में सहायक सिद्ध होता है।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

   i) .... के आधार पर सामरिक नियोजन और युक्ति नियोजन की व्याख्या की जाती है।

   ii) प्रतिस्पर्धी तथा अन्य बाह्य शक्तियों को अपने काबू में लाने के लिए जिन कार्यों की योजना बनाई जाती है उसे .... कहा जाता है।

   iii) सामरिक नियोजन की अपेक्षा युक्तिपूर्ण नियोजन में अधिक .... विधियों की आवश्यकता पड़ती है।

   iv) महत्वपूर्ण लक्ष्यों के निर्धारण कार्य में दीर्घकालिक नियोजन .... की व्यवस्था करता है।

   v) वांछित लक्ष्य की प्राप्ति में जो कारक बाधक सिद्ध होता है उसे .... कारक कहा जाता है।

9.10 सारांश

नियोजन भावी लक्ष्यों को निर्धारित करने तथा उनकी प्राप्ति के लिए साधनों (ways and means) के संबंध में निर्णय लेने की प्रक्रिया है। इसका अर्थ होता है कि पहले से ही निर्णय कर लिया जाए कि भविष्य में एक निश्चित अवधि तक क्या करना है और इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाएँ। नियोजन का स्थान अन्य सभी प्रबंधक कार्यों के पहले आता है। यह प्रबंध प्रक्रिया की एक उप प्रक्रिया है। यह सभी स्तरों और प्रबंध की सभी शाखाओं में व्याप्त होता है। यह अनिवार्य रूप से भविष्य–उन्मुखी होता है, लेकिन, इसे पुरानी प्रवृत्तियों, वर्तमान स्थितियों और भावी संभावनाओं से मदद भी मिलती है। यह उद्देश्य प्रबुद्ध प्रबंध कार्य है। इसमें औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही प्रकार के तत्व होते हैं परन्तु इसके साथ ही नियोजन एक बौद्विक प्रक्रिया है और इसके लिए कुछ विश्लेषात्मक और संकल्पनात्मक कौशलों की आवश्यकता होती है। मुख्यतः यह प्रयोजनात्मक और क्रियानान्मुखी कार्य होता है। नियोजन के अंतर्गत समस्या समाधान तथा निर्णय लेने की प्रक्रियाएँ आती हैं। इसके आधार कुछ अनुमान (assumptions) होते हैं। यह एक गतिक प्रक्रिया है।

क्षेत्र, महत्व और समय अवधि के आधार पर नियोजन का विभाजन कुछ स्तरों में किया जाता है जैसे निगम योजना और कार्य मूलक योजना, सामरिक नियोजन और युक्तिपूर्ण नियोजन,

दीर्घावधि नियोजन और अल्पावधि नियोजन। सभी प्रकार के योजनाओं का विभाजन दो मुख्य वर्गों में किया जा सकता है–एकल उपयोग योजना और स्थायी योजना। नियोजन का महत्व इससे होने वाले विभिन्न प्रकार के लाभ के फलस्वरूप होता है। नियोजन से संगठन के कार्यों तथा प्रबंधकों एवं अन्य व्यक्तियों के कार्य व्यवहार को दिशा मिलती है। नियोजन के फलस्वरूप प्रबंधक वर्ग विकल्पी मार्गों का परीक्षण करने और उनके संभावित परिणामों को जानने की स्थिति में हो जाता है। नियोजन प्रबंधकों को अपने आलस्य को छोड़ने को बाध्य करता है तथा उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे निकट वर्तमान के आगे की बातों के संबंध में विचार करें। यह आवेगी और मनमाने निर्णयों तथा तदर्थ कार्यों के प्रभाव को कम करता है। नियोजन सभी प्रकार के प्रबंध कायों के लिए आधार की व्यवस्था करता है। यह संगठन के महत्वपूर्ण और दुर्लभ संसाधनों के विवेकपूर्ण वितरण का साधन है तथा इसके चलते संसाधनों के उपयोग में कुशलता बढ़ती है। इसके अतिरिक्त नियोजन संगठन की क्षमता को बढ़ाकर उसे इस योग्य बनाता है कि वह बाह्य परिवेश में परिवर्तनों के अनुसार अपने को बना सके और अपने कार्यों को उसके अनुकूल कर सके। यह प्रबंधक वर्ग को साहसपूर्ण पहल करने, संकटों और खतरो का पहले से अनुमान लगाने और उन्हें दूर करने तथा अपने प्रतिस्पर्धियों से पहले ही अवसरों को पहचानने और उनसे लाभ उठाने के लिए प्रेरित करता है।

नियोजन की सीमाएँ इस प्रकार हैं। जो धारणाएँ तथा पूर्वानुमान योजना के आधार होते हैं, वे गलत भी हो सकते हैं। आवश्यक सूचना विश्वसनीय नहीं भी हो सकती है तथा वह समय पर उपलब्ध भी नहीं होती। बाह्य परिवेशों में होने वाले परिवर्तन कभी–कभी प्रबंध के ज्ञान और नियंत्रण के बाहर होते हैं। विशेषकर तेजी से होने वाले परिवर्तन की स्थिति में ऐसा होता है। इसके अतिरिक्त परिवेश में निरंतर और सूक्ष्म रूप से होने वाले परिवर्तन के कारण योजना सदा ही परिवर्तनों के निरंतर क्रम की स्थिति में होती है। नियोजन के कारण विलंब हो सकता है क्योंकि इसके संबंध में पहले से चिंतन करने और निर्णय लेने की आवश्यकता पड़ती है। कभी–कभी नियोजन के कारण प्रबंधकों के कार्यों में अनम्यता (rigidity) आ जाती है। इसके विपरीत नियोजन यथार्थ से बहुत दूर हो सकती है। अतः इसे कार्यान्वित करना कठिन होता है। विस्तृत योजनाओं के संबंध में ऐसा विशेषतः होता है।

नियोजन की प्रक्रिया के अंतर्गत नियोजन की योजना, आंतरिक स्थितियों और बाह्य परिवेशों का मूल्याकंन, नियोजन के प्रमुख क्षेत्रों और विषयों की परिभाषा, मूल्यांकन और चुनाव के लिए विकल्पी योजनाओं का विकास, मध्यकालिक और अल्पकालिक योजनाओं का निर्माण और योजनाओं को कार्यान्वित करना शामिल है। पूर्वानुमान नियोजन प्रक्रिया का आवश्यक तत्व है। यह तत्व आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिवेशों से संबंधित अनेक आयामों के बारे में सूचना एकत्रित करके प्रबंधकों को महत्वपूर्ण संकेत प्रदान करता है। यह भावी घटनाओं के संबंध में अनुमान और प्रक्षेपों (projections) की भी व्यवस्था करता है।

पूर्वानुमा से प्राप्त मूल्यांकनों, अनुमानों और प्रेक्षेपों को सार्थक धारणाओं के रूप में बदला जाता है जिन्हें नियोजन आधारिका (planning premises) के नाम से जाना जाता है। ये आधारिकाएँ विभिन्न वर्गों की हो सकती हैं: बाह्य, आंतरिक, मूर्त, अमूर्त, नियंत्रणीय और अनियंत्रणीय।

व्यापकता और समय अवधि के आधार पर नियोजन को चार वर्गों में बाँटा जाता है। ये हैं–सामरिक नियोजन, युक्तिपूर्ण नियोजन, दीर्घकालिक नियोजन और अल्पकालिक नियोजन, युक्तिपूर्ण और अल्पकालिक नियोजन को ''संक्रियात्मक नियोजन'' (operational planning) भी कहा जाता है।

प्रबंध कार्य के रूप में कुछ सिद्धांतों के आधार पर कार्यान्वित करना चाहिए। ये सिद्धांत हैं— शीर्षस्थ प्रबंधक वर्ग की रुचि का सिद्धांत, दीर्घकालिक दृष्टिकोण का सिद्धांत, लचीलेपन का सिद्धांत, मार्ग—निर्देश परिवर्तन का सिद्धांत, प्रतिबद्धता का सिद्धांत और प्रतिबंधक कारक का सिद्धांत।

निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल है : समस्या या अवसर का पता लगाना, संभावित विकल्पों को खोजना, विकल्पों का मूल्यांकन, सबसे अच्छा विकल्प का चयन, निर्णय का क्रियान्वयन और आगे की कार्यवाही करना।

9.11 शब्दावली

पूर्वानुमान	:	व्यवसाय की इकाइयों को प्रभावित करने वाले चरों के भावी व्यवहार के संबंध में अनुमान लगाना।
दीर्घकालिक नियोजन	:	दीर्घकालिक लक्ष्यों का निर्माण और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने से संबंधित साधन।
लक्ष्य	:	उद्देश्य या प्रायोजन जिसकी प्राप्ति के लिए व्यवसाय—कार्य किए जाते हैं।
संक्रियात्मक नियोजन	:	प्रबंध के मध्य या पर्यवेक्षण स्तरों पर विस्तृत क्रियाओं का आयोजन।
नियोजन	:	भावी लक्ष्यों के निर्धारण और उन्हें प्राप्त करने के लिए साधनों के संबंध में निर्णय की प्रक्रिया।
नीतियाँ	:	निर्णय लेने और कार्रवाई करने के मार्गदर्शी सिद्धांत।
सामरिक नियोजन	:	नियोजन की वह प्रक्रिया जिसके अंतर्गत परिवेश में होने वाले परिवर्तनों या और आंतरिक संसाधनों के संदर्भ में उत्पाद तथा बाजार निर्णय आते हैं।
युक्तियाँ	:	प्रतिस्पर्धी तथा परिवेश संबंधी अन्य कारकों पर काबू करने के लिए किए गए कार्य।
युक्तिपूर्ण नियोजन	:	महत्वपूर्ण योजना का कार्यान्वित करने के लिए विशेष प्रकार की तथा कार्यात्मक उपयोजनाओं को बनाने की प्रक्रिया।

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1) i) सही, ii) गलत, iii) गलत, iv) सही, v) सही

   2) i) भविष्य, ii) विषय—वस्तु किस्म, iii) सहजबोधनीय, iv) बौद्धिक, v) आधारिकाएँ vi) एकल उपयोग योजनाएँ, vii) वितरण, viii) साहसपूर्ण पहल

2. 1) i) अपूर्ण, विश्वसनीय ii) सुपरिवर्ती (fluid), iii) परिवेश iv) संकेत, v) मूर्त

   2) i) सही, ii) गलत iii) गलत, iv) गलत v) सही

3. 1) i) सही, ii) गलत, iii) गलत, iv) गलत, v) सही

   2) i) व्यापकता, ii) युक्तियाँ, iii) निश्चित (structured), iv) ढ़ाँचा, v) प्रतिबंधक।

9.13 स्वपरख प्रश्न

1) नियोजन की संकल्पना की व्याख्या करें तथा उसकी मुख्य विशेषताएँ बताएँ।

2) निम्नलिखित कथनों के संबंध में अपना मत प्रकट करें–

   क) नियोजन एक व्यापक प्रक्रिया है।

   ख) तेजी से बदलते हुए वातावरण की स्थिति में नियोजन निरर्थक कार्य होता है।

   ग) नियोजन करना तथा निर्णय लेना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

3) क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि नियोजन के कारण संगठन को अवश्य सफलता मिलती है ? कारण बताएँ।

4) क्या नियोजन बनाने की क्रिया आवश्यक होती है ? इसे स्पष्ट करें।

5) नियोजन की सीमाएँ इतनी गंभीर है कि इनके कारण इसे विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? क्यों ?

6) सामरिक नियोजन और दीर्घकालिक नियोजन के बीच क्या अंतर है।

7) नियोजन की प्रक्रिया का विवेचन करें।

8) नियोजन आधारिकाएँ (premises) क्या है ? नियोजन के साथ उनका किस प्रकार से संबंध है ?

9) नियोजन के लिए पूर्वानुमान को क्यों महत्वपूर्ण माना जाता है ?

10) नियोजन के सिद्धांत की व्याख्या करें।

11) ''दीर्घकालिक नियोजन से अभिप्राय है, भविष्य को बेहतर बनाने के लिए वर्तमान में निर्णय लेना। इस संबंध में अपना मत प्रकट करें।

12) नियोजन की प्रक्रिया में शीर्षस्थ प्रबंधक वर्ग का क्या योगदान है ?

टिप्पणी : ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजे। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 10 संगठन

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 संगठन कार्य की प्रकृति

  10.2.1 संगठन की विशेषताएँ

  10.2.2 संगठन का महत्व

10.3 संगठन–एक तंत्र के रूप में

10.4 संगठन प्रक्रिया में निहित सोपान

10.5 संगठन ढाँचा

  10.5.1 संगठन ढाँचे का महत्व

  10.5.2 संगठन ढाँचे का प्रकार

10.6 संगठन के सिद्धांत

10.7 नियंत्रण का विस्तार

10.8 संगठन चार्ट

10.9 संगठनात्मक नियम–पुस्तिका

  10.9.1 नियम–पुस्तिकाओं का महत्व

  10.9.2 नियम–पुस्तिकाओं के प्रकार

  10.9.3 नियम–पुस्तिका के गुण और दोष

10.10 औपचारिक और अनौपचारिक संगठन

  10.10.1 औपचारिक और अनौपचारिक संगठनों में अंतर

  10.10.2 अनौपचारिक संगठन की विशेषताएँ

  10.10.3 अनौपचारिक संगठन के कार्य

  10.10.4 अनौपचारिक संगठन की समस्याएँ

10.11 सारांश

10.12 शब्दावली

10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.14 स्वपरख प्रश्न

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- संगठन के महत्व को समझ सकेंगे।
- संगठन शब्द का विभिन्न व्याख्याओं का वर्णन कर सकेंगे।
- संगठन ढाँचें के विभिन्न प्रकारों, जैसे कार्यात्मक, खंडीय एवं अनुकूली, में अंतर कर सकेंगे।
- किसी भी संगठन के औपचारिक और अनौपचारिक आयामों का विश्लेषण कर सकेंगे

- पर्यवेक्षण क्षमता की सीमा, संगठन चार्ट और नियम–पुस्तिका के महत्व को समझ सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

इकाई 9 में आपने नियोजन की प्रकृति, महत्व, प्रक्रिया प्रकार एवं सिद्धांत के सम्बन्ध में अध्ययन किया है। वर्तमान इकाई में आप प्रबंध के संगठन कार्य और इसके आंगिक पहलुओं (integral aspects) जैसे संगठन ढाँचा, चार्टों, नियम पुस्तिकाओं, औपचारिक और अनौपचारिक संगठन, संगठन के स्वरूप और नियंत्रण–क्षमता की सीमा के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

10.2 संगठन कार्य की प्रकृति (Nature of Organising Function)

प्रबंध को एक कार्य के रूप में संगठन बनाने का तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें किये जाने वाले कार्यकलाप को तय करना और वर्गीकृत करना, परिभाषित करना, और अधिकार–दायित्व संबंधों को स्थापित करना सम्मिलित है। इसके परिणामस्वरूप उद्यम के सदस्य इसके उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये मिलकर प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य करते हैं। सामान्य अर्थ में, संगठन बनाने में एक उद्यम द्वारा अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये आवश्यक कर्मचारी, सामग्री, मशीन और अपेक्षित धन एवं व्यवस्था सम्मिलित है। एक सीमित एवं कार्यात्मक (operational) अर्थ में, संगठन शब्द का अर्थ नियुक्त व्यक्तियों के कार्यों एवं दायित्वों को परिभाषित करना और यह निश्चित करना है कि उनके कार्यकलाप किस प्रकार से आपस में संबंधित हैं। संगठन बनाने का अंतिम परिणाम है विभिन्न पदों पर काम करने वाले व्यक्तियों के कर्तव्यों एवं दायित्वों का एक ढाँचा जिसमें वर्गीकरण कार्यकलाप की समानता एवं परस्पर संबंधित प्रकृति के आधार पर किया जाता है। दूसरे शब्दों में, संगठन प्रक्रिया का परिणाम एक 'संगठन" है जिसमें व्यक्तियों का एक समूह आपस में मिलकर एक या अधिक सामान्य उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये कार्य करता है।

10.2.1 संगठन की विशेषताएँ

संगठन की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1) **व्यक्तियों का समूह** : एक संगठन का निर्माण उस समय होता है जब व्यक्तियों का एक समूह किसी सामान्य उद्देश्य के लिए अपने प्रयत्नों को एक साथ जोड़ता है और उसी सामान्य उद्देश्य के लिए स्वेच्छापूर्वक सामान्य प्रबंध करता है।

2) **काम का विभाजन** : संगठन की स्थापना में सम्पूर्ण काम का विभिन्न कार्यकलाप एवं कार्यों में विभाजन तथा इनका विभिन्न व्यक्तियों को उनकी निपुणता, योग्यता एवं अनुभव के अनुसार सौंपना सम्मिलित है।

3) **सामान्य उद्देश्य** : प्रत्येक संगठन का प्रादुर्भाव उद्यम के लक्ष्यों के आधार पर होता है और ये लक्ष्य नियुक्त व्यक्तियों के व्यक्तिगत लक्ष्यों से अलग होते हैं। संगठन का सामान्य उद्देश्य ही संगठन के सदस्यों में सहयोग का आधार प्रदान करता है।

4) **लम्बवत एवं क्षैतिजिक संबंध** : एक संगठन विभिन्न विभागों एवं खंडों के अतिरिक्त वरिष्ठों एवं अधीनस्थों में सहकारिता संबंध स्थापित करता है। विभिन्न कार्यों एवं कार्यकलाप जैसे, उत्पादन, विपणन, वित्त, आदि का एकीकरण समुचित समन्वय प्राप्त करने के लिये किया जाता है। प्रत्येक विभाग अथवा खंड में वरिष्ठों एवं अधीनस्थों

के कार्यों एवं दायित्वों का भी एकीकरण किया जाता है ताकि उनके संयुक्त प्रयत्नों का उद्देश्य सफल हो सके।

5) **आदेश की श्रृंखला (Chain of Command) :** एक संगठन में वरिष्ठ–अधीनस्थ संबंधों की स्थापना उच्च स्तर के प्रबंध से अगले निचले स्तर के प्रबंध को चलाने वाले प्राधिकार के आधार पर होती है जो एक सौपानिक श्रृंखला को जन्म देती है। इसे ही आदेश की श्रृंखला के रूप में जाना जाता है जो सम्प्रेषण की रेखा भी निश्चित करता है।

6) **संगठन की गतिशीलता (Dynamics of Organisation) :** व्यक्तियों में संरचनात्मक संबंधों के अलावा उनके कार्यकलाप एवं कार्यों के आधार पर एक संगठनात्मक अंतःक्रिया भी होती है जो व्यक्तियों और व्यक्ति–समूहों की भावनाओं, रूझानों (attitudes) एवं व्यवहार पर आधारित है। संबंध के पहलू संगठन के कामकाज में एक गतिशील तत्व प्रदान करते हैं। ये समय–समय पर परिवर्तित होते रहते हैं।

10.2.2 संगठन का महत्व

एक सुदृढ़ संगठन उद्यम की निरंतरता और सफलता में अत्यधिक योगदान देता है। इसके महत्व की चर्चा नीचे दी गई है :

1) **प्रशासन को सुविधाजनक बनाता है** : सुदृढ़ संगठन प्रबंध व्यवस्था में वर्णित संसाधनों के व्यापक उद्देश्यों को निरन्तर गति प्रदान करता है। यह एक समुचित मंच प्रदान करता है जहां से प्रबंध व्यवस्था, नियोजन, निर्देशन, समन्वय, अभिप्रेरण एवं नियंत्रण के कार्यों को पूरा किया जा सकता है।

2) **विकास एवं विविधीकरण को सुविधाजनक बनाता है** : यह संगठन के विविधीकरण में मदद करता है। कार्यकलाप का विकास एवं विविधता काम का स्पष्ट विभाजन, प्राधिकारों के समुचित प्रत्यायोजन आदि से आसान हो जाता है। जब संगठन एक उचित अनुपात तक विस्तार हो जाता है तो कार्यात्मक संगठन को एक और लोचदार विकेन्द्रीकृत संगठन द्वारा पुनर्स्थापित किया जा सकता है।

3) **संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग सम्भव बनाता है** : सुदृढ़ संगठन तकनीकी एवं मानवीय संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग करने में सहायक होता है। संगठन नवीनतम तकनीकी सुधारों जैसे कम्प्यूटर, समंकों के प्रक्रियाकरण की विद्युत–तरंग वाली मशीनों (Electronic Data Processing Machine) आदि को अपना अंग बना सकता है। यह विशिष्टीकरण के माध्यम से मानवीय प्रयत्नों का अनुकूलतम प्रयोग सम्भव बनाता है। यह प्रशिक्षण और पदोन्नति के समुचित अवसर प्रदान करके व्यक्तियों का विकास भी करता है। इस प्रकार संगठन एक कम्पनी को पूर्वानुमानित आवश्यकताओं की बदली हुई दशाओं का सामना करने के लिए हर सम्भव शक्ति प्रदान करता है।

4) **रचनात्मकता को उत्तेजित (stimulate) करता है** : विशिष्टीकरण सदस्यों को सुस्पष्ट कर्त्तव्यों एवं प्राधिकार की स्पष्ट रेखाओं एवं दायित्व प्रदान करता है। सुदृढ़ संगठन संरचना प्रबंधकों को इस योग्य बनाती है कि वे नैत्यिक एवं पुनरावृत्त कार्यों को सहायक पदों को दे सकें और उन महत्वपूर्ण मामलों पर ध्यान दे सकें जहां वे अपनी योग्यता का अधिक अच्छा प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार, यह व्यक्तियों की रचनात्मकता को प्रोत्साहित करता है।

5) **मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करता है** : व्यक्ति कार्य–दलों में काम कर सकते हैं न कि रॉबट या मशीनों की भांति। संगठन कार्य के चक्रानुक्रम (job rotation) एवं कार्य विस्तार (job enlargement) तथा समृद्धि (enrichment) प्रदान

करता है। कार्यों को मानवीय आवश्यकताओं के अनुरूप सार्थक और दिलचस्प बनाया जाता है। संगठन कर्मचारियों के चयन, प्रशिक्षण, पारिश्रमिक और पदोन्नति की कुशल पद्धतियों को अपनाता है। समुचित प्रत्यायोजन (proper delegation) और विकेन्द्रीकरण प्रेरक कार्यकारी माहौल और प्रजातांत्रिक तथा भागीदारी नेतृत्व कर्मचारियों को अपने काम में अधिकाधिक संतोष प्रदान करते हैं। यह प्रबंध के विभिन्न स्तरों में अंतःक्रिया को बढ़ाता है।

यद्यपि हमने ऊपर संगठन के महत्व का विवेचन किया है लेकिन एक सुदृढ़ संगठन ढाँचा अपने आप में सफलता की गारंटी नहीं दे सकता है। प्रोफेसर ड्रकर के अनुसार अच्छा संगठन ढाँचा अपने आप अच्छा निष्पादन नहीं दे सकता है—ठीक उसी प्रकार जैसे एक अच्छा संविधान महान राष्ट्रपति अथवा अच्छे कानून अथवा एक नैतिक समाज की गारंटी नहीं दे सकता है। परंतु एक अक्षम (poor) संगठन ढाँचा अच्छा निष्पादन असम्भव बना देता है, चाहे संगठन के सदस्य कितने भी अच्छे क्यों न हो।

10.3 संगठन – एक तंत्र के रूप में (Organisation as a System)

तंत्र की अवधारणा यह मानती है कि संगठन ऐसी उप–इकाइयों से बनते हैं जिनमें से प्रत्येक की खास विशेषताएँ, योग्यताएँ और आपसी संबंध होते हैं। यह तंत्र के महत्व को और अधिक मानता है और इस बात पर जोर देता है कि विभिन्न अवयवों से बना एक समग्र इसके अवयवों के साधारण गणितीय योग से बिल्कुल भिन्न होगा। ''तंत्र" शब्द की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं। अधिकांश परिभाषाएँ ''जटिल समग्र'', ''अधिकारों का समूह'' संबंधों का समूह'', ''संसाधन नेटवर्क" ''परस्पर संबंधित हिस्सों का पिंड'' आदि शब्दों का प्रयोग करती हैं। अपने विश्लेषण के लिए हम तंत्र की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैः तंत्र विभिन्न भागों के बीच के संबंधों का समूह हैं जिसका प्रचालन एक पूर्ण रूप में होता है। एक संगठन जिसे तंत्र के रूप में देखा जाता है वह बहुत से परस्पर निर्भर तथा परस्पर संबंधित अवयवों से बना है जिसे उपतंत्र कहा जाता है। प्रत्येक उपतंत्र अपने आप में एक तंत्र है जो छोटे–छोटे अंतर्संधित अवयवों या उपतंत्रों से बना होता है।

एक संगठन के अवयव

एक सामाजिक तंत्र के रूप में संगठन के निम्नलिखित अवयव हैः

1) **आगत (Inputs) :** जैसा चित्र–1 में दिखाया गया है, तंत्र पर्यावरण से निश्चित आगतों को लेता है। ये आगत हैंः मानवीय संसाधन, भौतिक संसाधन, ऊर्जा एवं सूचना।

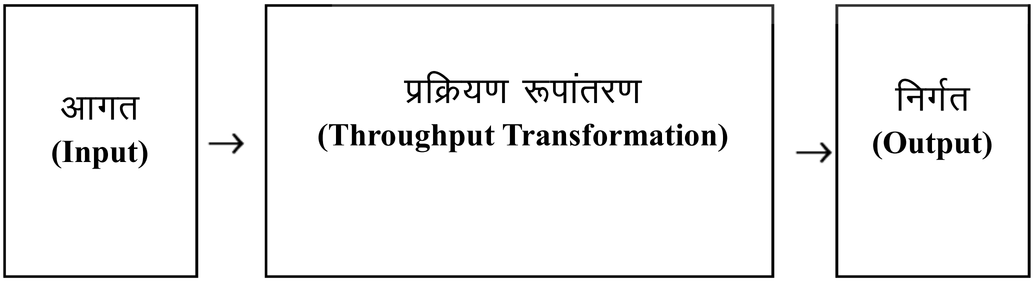

चित्र 10.1ः संगठन एक तंत्र के रूप में

2) **प्रक्रिया** : प्रक्रिया अथवा प्रक्रियण के माध्यम से संस्था में निवेशों का उपयोग वांछित निर्गतों को उत्पादित करने के लिये किया जाता है। प्रक्रिया अर्थात् प्रक्रियण के लिये कई उपतंत्रों, जैसे उत्पादन, विपणन, वित्त, कर्मचारी और शोध तथा विकास को

बनाना आवश्यक है; प्रत्येक उपतंत्र को पुनः उपतंत्रों में विभाजित किया जा सकता है। व्यक्तिगत कर्मचारी भी एक उपतंत्र है जो बहुसंख्यक भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक उपतंत्रों से बना है। विभिन्न उपतंत्रों के परस्पर संबंध को सर्वत्र ध्यान में रखना आवश्यक है।

3) **निर्गत (output) :** एक संगठन का निर्गत अभीष्ट और गैर–अभीष्ट (unintended) दोनों ही हो सकता है। अभीष्ट निर्गत सामान्यतः वर्गीकृत उद्देश्य होते हैं। उदाहरण के लिये, उच्च उत्पादकता एक वर्गीकृत उद्देश्य है। निर्गत वस्तुएँ या सेवाएँ दोनों ही हो सकता है। एक गैर–अभीष्ट निर्गत दल के सदस्यों के बीच अनौपचारिक संबंध हो सकता है।

4) **प्रबंध व्यवस्था** : तंत्र का प्रबंधकीय अवयव अभीष्ट निर्गत को प्राप्त करने के लिये प्रक्रिया के कार्यों के निश्चयन और क्रियान्वयन से संबंधित है। प्रबंध के अंतर्गत नियोजन, संगठन, नियुक्तियाँ, निर्देशन और नियंत्रण के कार्य सम्मिलित हैं। प्रबंध करने के लिये, तंत्र के निर्गत की किस्म, लागत, मात्रा और समय से संबंधित पुनः निवेशन आवश्यक है। प्रबंधकों के लिये यह आवश्यक है कि वे किस्म, मात्रा, लागत और समय के पुनः निवेशन (feedback) द्वारा वांछित परिणामों से सम्बद्ध मानकों का निश्चयन एवं क्रियान्वयन करें। पुनः निवेशन क्रिया (feed-back-initiation activity) को सक्रिय बना कर भी प्रबंधकों को वांछित परिणामों से सम्बद्ध मानकों का निश्चयन एवं क्रियान्वयन करना चाहिए। यदि पूर्वनिर्धारित मानकों के अनुसार निर्गत अनुपयुक्त अथवा अपर्याप्त लगते हैं तो सुधारक उपाय, जैसे कर्मचारियों का पथप्रदर्शन अथवा उन्हें चेतावनी, आयोजन और संगठन में सुधार, मानकों का पुनरीक्षण आदि, किये जा सकते हैं।

10.4 संगठन प्रक्रिया में निहित सोपान

संगठन में निम्नलिखित अंर्तसम्बंधित सोपान सम्मिलित हैं:

1) **उद्देश्यों का निर्धारण** : संगठन का संबंध हमेशा किन्हीं उद्देश्यों से होता है। इसलिए प्रबंध व्यवस्था के लिये यह आवश्यक है कि कोई भी कार्य प्रारम्भ करने से पहले वह उद्देश्यों को निर्धारित कर ले। यह प्रबंध को कर्मचारियों एवं सामग्री के चुनाव में सहायता देगा जिससे वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सकता है। उद्देश्य प्रबंध व्यवस्था और कार्यकर्ताओं के लिए पथप्रदर्शक का काम भी करते हैं। वे संगठन में निर्देशन की एकता को लाएँगे।

2) **कार्यकलाप का तादात्मीकरण एवं वर्गीकरण** : यदि दल के सदस्य अपने प्रयत्नों को प्रभावपूर्ण ढंग से इकट्ठा करना चाहते हैं तो प्रमुख कार्य का उचित विभाजन होना आवश्यक है। प्रत्येक काम का उचित विभाजन एवं वर्गीकरण आवश्यक है। इससे सदस्य यह जान सकेंगे कि दल के सदस्य के रूप में उनसे क्या आशा की जाती है और इससे प्रयत्नों के दोहरेपन से भी बचा जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्तिगत औद्योगिक संगठन के कुल कार्यों को प्रमुख कार्यों में जैसे उत्पादन, क्रय, विपणन और वित्त में विभाजित किया जा सकता है और ऐसे प्रत्येक कार्य को पुनः कई भिन्न कामों में बांटा जा सकता है। इसके पश्चात् प्रत्येक काम का विभाजन एवं वर्गीकरण किया जा सकता है ताकि दूसरे कदमों का प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन किया जा सके।

3) **कर्त्तव्यों का आवंटन** : कार्यों को विभिन्न भागों में वर्गीकृत और समूहीकृत कर लेने के बाद उन्हें व्यक्तियों को आवंटित किया जाना चाहिए ताकि वे उनका प्रभावशाली निष्पादन कर सकें। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी क्षमता के अनुसार विशिष्ट काम करने के लिये दिया जाना चाहिए और उसे उसके लिये उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए। उसे जो काम सौंपा गया है उसे पूरा करने के लिये पर्याप्त अधिकार भी उसे दिए जाने चाहिए।

4) **संबंधों को विकसित करना** : चूँकि एक ही संगठन में बहुत से व्यक्ति काम करते हैं अतः संगठन में संबंधों का ढाँचा स्थापित करना प्रबंध की जिम्मेदारी है। प्रत्येक व्यक्ति को यह स्पष्ट रूप से पता होना चाहिए कि वह किसके प्रति उत्तरदायी है। यह प्राधिकार और दायित्व के प्रत्यायोजन को सुविधाजनक बनाकर उद्यम के निर्विघ्न परिचालन में सहायता करता है।

5) **कार्यों के इन वर्गों का एकीकरण** : सारे दल के कार्यों में एकीकरण निम्न ढंग से प्राप्त किया जा सकता है–(क) प्राधिकार संबंधों के माध्यम से– क्षैतिजीय, लम्बवर्तीय और पार्श्विक रूप से, तथा (ख) संगठित सूचना या सम्प्रेषण व्यवस्था के माध्यम से, अर्थात् प्रभावपूर्ण समन्वय एवं सम्प्रेषण की सहायता से। विभिन्न कार्यों के एकीकरण द्वारा हम उद्देश्यों की एकता, टीम–कार्य एवं टीम–भावना प्राप्त कर सकते हैं।

10.5 संगठन ढाँचा (Organisation Structure)

संगठन ढाँचे को किसी संगठन के अवयव भागों के बीच में संबंधों के स्थापित प्रतिरूप के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इस अर्थ में संगठन ढाँचे से तात्पर्य किसी संगठन के विभिन्न सदस्यों एवं पदों के बीच में संबंधों के तंत्र से है। यह संगठन की संरचना को बताता है। जिस प्रकार मानव शरीर में अस्थि पंजर समष्टिज (parameters) को परिभाषित करते हैं उसी प्रकार संबंधों का ढाँचा संगठन के समष्टिज को परिभाषित करता है। यह एक भवन की वास्तुकला की योजना के समान है। जिस प्रकार वास्तुशिल्पी एक अच्छा ढाँचा तैयार करते समय विभिन्न तत्वों, जैसे लागत, स्थान आवश्यक विशिष्ट विशेषताओं आदि पर ध्यान देता है। उसी प्रकार प्रबंधकों को भी संगठन ढाँचा तैयार करने से पहले विभिन्न तत्वों जैसे विशिष्टीकरण के लाभ, सम्प्रेषण की समस्याएँ, प्राधिकार–स्तरों की रचना में कठिनाइयों, आदि पर विचार करना जरूरी है।

प्रबंधक किसी काम को पूरा कराने के लिये संबंधित कार्यों को निश्चित करता है, कार्य–विवरण लिखता है और व्यक्तियों को दलों में संगठित करता है तथा उन्हें वरिष्ठों के साथ लगाता है। तत्पश्चात वह लक्ष्यों एवं सीमा रेखा और निष्पादन के मानक निर्धारित करता है। कार्यों का नियंत्रण एक सूचना–व्यवस्था के द्वारा किया जाता है। सम्पूर्ण संगठन ढाँचा एक पिरामिड का रूप लेता है। संरचनात्मक संगठन में निम्नलिखित तत्व निहित हैं:

i) सुपरिभाषित कर्त्तव्यों और दायित्वों के साथ औपचारिक संबंध

ii) संगठन के अंतर्गत वरिष्ठों एवं अधीनस्थों के बीच सोपानिक संबंध

iii) विभिन्न व्यक्तियों एवं विभागों को काम सौंपना

iv) विभिन्न कामों और कार्यकलाप का समन्वय

v) निष्पादन के मूल्यांकन के लिये नीतियों, कार्यविधियों, मानकों एवं तरीकों का एक सेट बनाना जिन्हें व्यक्तियों और उनके कार्यकलाप के पथप्रदर्शन के लिये बनाया जाता है।

जानबूझकर बनाई गई व्यवस्था ही संगठन का औपचारिक ढाँचा है। परंतु व्यक्तियों के वास्तविक कार्यकलाप और व्यवहार सदा संबंधों के औपचारिक ढाँचे द्वारा नियंत्रित नहीं होते हैं। इस प्रकार औपचारिक व्यवस्था प्रायः सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक शक्तियों द्वारा परिवर्तित कर दी जाती है और कार्यरत ढाँचा संगठन का आधार प्रस्तुत करता है।

10.5.1 संगठन ढाँचे का महत्व

संगठन ढाँचा संगठनों को सुचारू कार्य प्रणाली में निम्नलिखित ढंग से योगदान करता हैः

1) **सुस्पष्ट प्राधिकार संबंध** : संगठन ढाँचा प्राधिकार और दायित्व का आवंटन करता है। यह सुनिश्चित करता है कि कौन किसे निर्देश देगा और कौन किस परिणाम के लिये उत्तरदायी है। ढाँचा संगठन के प्रत्येक सदस्य को यह जानने में सहायता करता है कि उसकी भूमिका क्या है और अन्य भूमिकाओं से यह किस प्रकार संबंधित है।

2) **सम्प्रेषण का प्रतिरूप** : संगठन ढाँचा सम्प्रेषण और समन्वय का प्रतिरूप प्रदान करता है। कार्यों और व्यक्तियों का वर्गीकरण करके ढाँचा अपने रोजगार कार्यों में लगे व्यक्तियों में सम्प्रेषण को सुविधाजनक बनाता है। जिन व्यक्तियों की संयुक्त समस्याएँ होती हैं प्रायः उन्हें सुलझाने के लिए सूचनाओं के आदान–प्रदान की आवश्यकता होती है।

3) **निर्णय केन्द्रों का स्थान** : संगठन ढाँचा संगठन में निर्णय लेने के केन्द्रों का स्थल निर्धारित करता है। उदाहरण के लिये, एक विभागीय भण्डार एक ऐसा ढाँचा अपना सकता है जिसमें कीमत निर्धारण, विक्रय प्रवर्तन तथा अन्य मामले अधिकांशतः व्यक्तिगत विभागों को सुपुर्द कर दिये जाते हैं ताकि विभिन्न विभागीय दशाओं पर विचार सुनिश्चित किया जा सके।

4) **समुचित संतुलन** : संगठन ढाँचा समुचित संतुलन बनाता है और वर्गीकृत कार्यों के समन्वय पर बल देता है। उद्यम की सफलता के लिये अधिक नाजुक पहलुओं को संगठन में अधिक वरीयता दी जा सकती है। उदाहरण के लिए, दवाइयों की एक कम्पनी में शोध कार्य को पृथक किया जा सकता है ताकि इसकी निष्पादन सूचना कम्पनी के सामान्य प्रबंधक अथवा प्रबंध संचालक को दी जाए। तुलनीय महत्व के कार्यकलापों को ढाँचे में लगभग समान स्तर प्रदान किया जा सकता है ताकि उन पर बराबर बल दिया जा सके।

5) **रचनात्मकता को प्रोत्साहित करना** : सुदृढ़ संगठन ढाँचा अधिकारों के सुपरिभाषित प्रतिरूप को प्रदान कर संगठन के सदस्यों में रचनात्मक चिंतन एवं पहल को प्रोत्साहित करता है। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि वह किस क्षेत्र में विशेषज्ञ है और कहाँ उसके प्रयत्नों की प्रशंसा की जाएगी।

6) **वर्धन या विकास को प्रोत्साहित करना** : एक संगठन ढाँचा ऐसी संरचना प्रदान करता है जिसके अंतर्गत एक उद्यम कार्य करता है। यदि यह लोचनीय है तो वर्धन की चुनौतियों का सामना करने एवं अवसर प्रदान करने में यह सहायता करेगा। एक सुदृढ़ संगठन कार्यकलाप के बढ़े हुए स्तर को सम्भालने की उद्यम की क्षमता को बढ़ाकर इसके या विकास को सुविधाजनक बनाता है।

7) **प्रौद्योगिकी सुधारों का प्रयोग करना** : एक सुदृढ़ संगठन ढाँचा जो परिवर्तनों के अनुरूप हो सकता है. नवीनतम प्रौद्योगिकी (latest technology) का सर्वोत्तम सम्भव प्रयोग कर सकता है। यह प्रौद्योगिकीय सुधारों के साथ वर्तमान प्राधिकार–दायित्व संबंधों के प्रतिरूप में परिवर्तन कर देगा।

संक्षेप में, बेहतर प्रबंध के लिए एक अच्छे संगठन ढाँचे का होना आवश्यक है। समुचित रूप से बनाया गया संगठन एक ऐसी संरचना प्रदान करता है जो टीम वर्क और उत्पादकता को सुधारने में सहायता कर सकता है, जिसमें व्यक्ति एक साथ मिलकर सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से काम कर सकते हैं। इसलिए संगठन के व्यक्तियों की आवश्यकताओं के अनुसार संगठन ढाँचा का विकास किया जाना चाहिए।

10.5.2 संगठन ढाँचे का प्रकार

कार्यों के विन्यास के आधार पर विभिन्न प्रकार के संगठन ढाँचों में अंतर किया जा सकता है। इस प्रकार संगठनात्मक स्वरूपों के तीन प्रमुख प्रकार हैं :

1) कार्यात्मक
2) खंडीय और
3) अनुकूली

कार्यात्मक ढाँचा (Functional structure) : जब एक संगठन में इकाइयाँ और उप–इकाइयाँ कार्यों के आधार पर बनायी जाती हैं तो इसे कार्यात्मक ढाँचा कहा जाता है। इस प्रकार किसी भी औद्योगिक संगठन में निर्माण, विपणन, वित्त एवं कार्मिक जैसे विशिष्ट कार्य संगठन को अलग इकाई के रूप में बनाए जाते हैं। ऐसे प्रत्येक कार्य से संबंधित सभी कार्यकलाप एक ही इकाई में सम्मिलित किये जाते हैं। जैसे–जैसे कार्यकलाप की मात्रा बढ़ती जाती है, प्रत्येक इकाई में निचले स्तरों पर उप–इकाइयाँ बना दी जाती हैं और विभिन्न स्तरों पर प्रत्येक प्रबंधक के अधीन व्यक्तियों की संख्या बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप परस्पर संबंधित पद एक पिरामिड के आकार के हो जाते हैं। नीचे चित्र में एक मध्यम आकार के संगठन का कार्यात्मक ढाँचा दिखाया गया है :

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

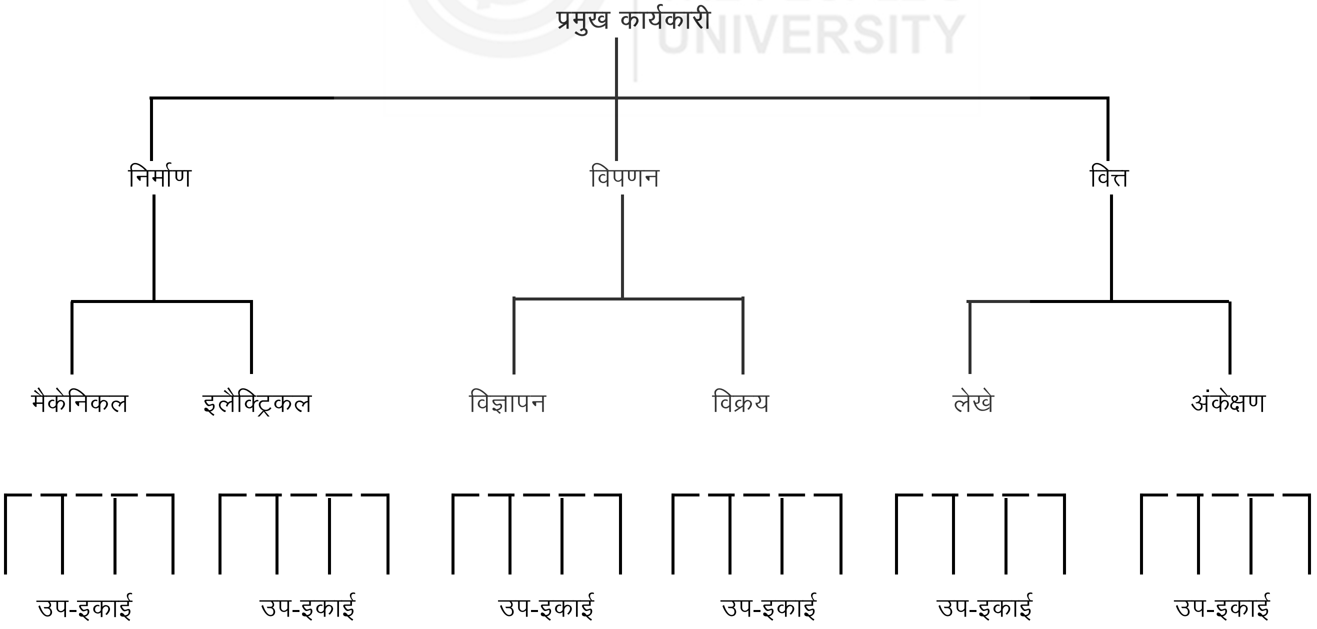

चित्र 10.2: कार्यात्मक ढ़ाँचा

संगठन के कार्यात्मक ढाँचे का प्रमुख लाभ प्रत्येक इकाई में होने वाला कार्यात्मक विशिष्टीकरण है, जिससे काम पर लगे व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है और सम्पूर्ण संगठन, क्रियाओं के विशिष्टीकरण का लाभ प्राप्त करता है। कार्यात्मक इकाइयों के प्रधान प्रमुख कार्याधिकारी के सम्पर्क में होते हैं जो अंतर्विभागीय समस्याओं का समाधान कर सकता है और परस्पर संबंधित कार्यों का समन्वय कर सकता है। प्रमुख कार्याधिकारी

निचले स्तर के अधीनस्थों के भी प्रत्यक्ष सम्पर्क में होता है जिससे उसे संगठन की गतिविधियों के बारे में पूर्ण जानकारी हो जाती है।

तथापि कभी–कभी कार्यात्मक विन्यास लघु एवं मध्य आकार के संगठनों के लिये उपयुक्त हो सकता है। यह ऐसे संगठन की समस्याओं से निपटने में असमर्थ होता है जिसके आकार और जटिलता में वृद्धि होती है। निचले स्तरों की उप–इकाइयों की समस्याओं पर उच्च स्तरीय प्रबंधक पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते जबकि कुछ कार्यकलाप पर अधिक बल दिया जाता है।

कार्यात्मक इकाइयों का प्रबंध एवं नियंत्रण उस समय अधिक कठिन हो जाता है जब बहुत–सी उप–इकाइयों में विविध प्रकार के कार्य किये जाते हैं। वरिष्ठों एवं अधीनस्थों में व्यक्तिगत सम्पर्क दुर्लभ हो जाता है एवं सम्प्रेषण का प्रवाह धीमा पड़ जाता है जिसके परिणामस्वरूप समन्वय एवं नियंत्रण में कठिनाइयाँ आ जाती हैं।

खंडीय ढाँचा (Divisional structure) : खंडीय संगठन ढाँचा बहुत बड़े उद्यमों के लिये, विशेषकर उनके लिये जो एक से अधिक विशिष्ट बाजारों में काम करने के लिये विविध उत्पादों में लेन–देन करते हैं अधिक उपयुक्त है। तत्पश्चात् संगठन को छोटी–छोटी व्यावसायिक इकाइयों में बाँट दिया जाता है और इन्हें विभिन्न उत्पादों अथवा विभिन्न बाजार–क्षेत्रों से संबंधित व्यवसाय सौंप दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, स्वतंत्र खंडों (उत्पाद खंड या बाजार खंड) की रचना प्रधान कार्यालय के व्यापक नियंत्रण के अंतर्गत की जाती है। प्रत्येक खंडीय प्रबंधक को एक निश्चित उत्पाद, बाजार खंड, या क्षेत्रीय बाजार से संबंधित सभी कार्यों को चलाने के लिये स्वायत्तता प्रदान की जाती हैं। इस प्रकार, प्रत्येक खंड के जिम्मे कई एक सहायक कार्य भी हो सकते हैं।

एक खंडीय ढाँचे में दो या अधिक उत्पाद खंड या बाजार या क्षेत्रीय खंड हो सकते हैं, जैसा कि चित्र 10.3 और 10.4 में दिखाया गया है।

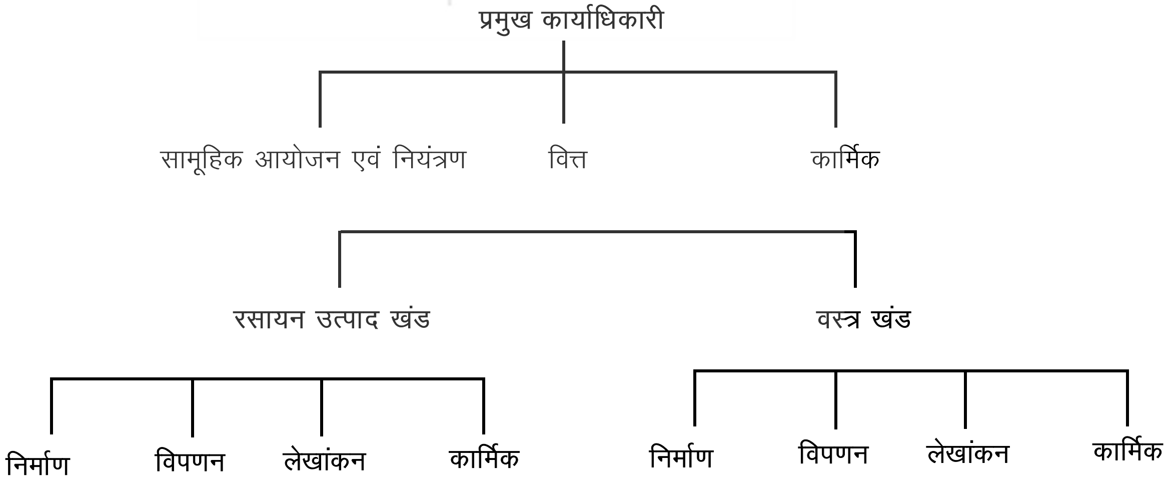

चित्र 10.3: उत्पाद खंडीकरण

एक खंडीय ढाँचे में प्रत्येक खंड संगठन को नियोजित लाभ का योगदान देता है, परंतु सभी मामलों में एक स्वतंत्र व्यवसाय की भांति कार्य करता है। कार्यात्मक इकाइयों के प्रधान प्रबंधक होते हैं जबकि अंतिम अधिकार खंडीय प्रबंधक के हाथ में होता है जो खंड की विभिन्न कार्यात्मक इकाइयों के कार्यकलापों का समन्वय एवं नियंत्रण करता है। संगठन का सर्वोच्च अधिकारी धन प्रदान करने के अलावा संगठन के लक्ष्यों को निर्धारित करता है और कार्य–नीतियों को बनाता है।

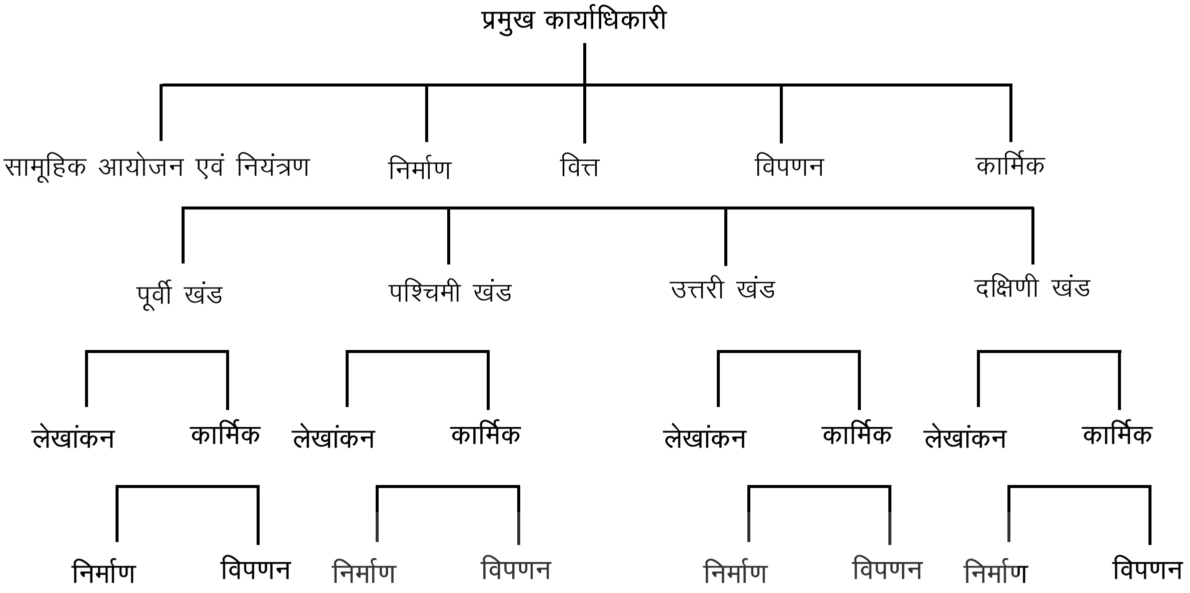
प्रमुख कार्याधिकारी
सामूहिक आयोजन एवं नियंत्रण
निर्माण
वित्त
विपणन
कार्मिक
पूर्वी खंड
पश्चिमी खंड
उत्तरी खंड
दक्षिणी खंड
लेखांकन
कार्मिक
लेखांकन
कार्मिक
लेखांकन
कार्मिक
लेखांकन
कार्मिक
निर्माण
विपणन
निर्माण
विपणन
निर्माण
विपणन
निर्माण
विपणन

चित्र 10.4: क्षेत्रीय खंडीकरण

खण्डीय ढांचे की प्रमुख विशेषता प्राधिकार का विकेन्द्रीकरण है। इस प्रकार यह प्रबंधकों को शीघ्र निर्णय लेने एवं खण्डों के अनुरूप समस्याओं के समाधान करने में समर्थ बनाता है। यह खंड़ीय प्रबंधकों को अपने अधिकार क्षेत्र से सम्बंधित मामलों में पहल करने के अवसर भी प्रदान करता है। परंतु इस प्रकार के ढाँचे की वित्तीय लागत बहुत ज्यादा होती है क्योंकि इसमें खंडों के लिये सहायक कार्यकारी इकाइयों का दोहरापन होता है। साथ ही, इसमें विभिन्न खण्डों एवं उनकी कार्यात्मक इकाइयों को सम्भालने के लिए पर्याप्त संख्या में समर्थ प्रबंधकों की आवश्यकता होती है।

अनुकूली ढाँचा (Adaptive Structure) : संगठन ढाँचों की रचना प्रायः उपक्रम और परिस्थिति की विलक्षण प्रकृति का सामना करने के लिये की जाती है। इस प्रकार का ढाँचा अनुकूली ढाँचा कहलाता है। इस प्रकार के ढाँचे दो निम्न प्रकार के हैं:

1) प्रोजेक्ट संगठन

2) मैट्रिक्स संगठन

1) **प्रोजेक्ट संगठन (Project Organisation) :** जब एक उद्यम कोई विशिष्ट एवं समयबद्ध ऐसा काम लेता है जिसमें लम्बी अवधि में काम एक ही बार में पूरा किया जाना है तो प्रोजेक्ट संगठन सर्वाधिक उपयुक्त पाया जाता है। ऐसी स्थिति में प्रचलित संगठन एक विशेष इकाई की रचना करता है ताकि संगठन के नियमित कार्य में विध्न डाले बिना प्रोजेक्ट के काम को किया जा सके। यह उस समय आवश्यक हो जाता है जब उसके बिना विशिष्ट काम या प्रोजेक्ट का पूरा किया जाना सम्भव नहीं है। प्रचलित संगठन ढाँचे के अंतर्गत, प्रोजेक्ट में एक नये उत्पाद का विकास, एक प्लांट को लगाना, एक कार्यालय संकुल का निर्माण, आदि सम्मिलित हो सकते हैं। प्रोजेक्ट संगठन का प्रधान प्रोजेक्ट प्रबंधक होता है जो मध्य स्तर का प्रबंधक है और सीधे प्रमुख कार्याधिकारी को प्रतिवेदन करता है। प्रोजेक्ट संगठन के लिये अन्य प्रबंधक और कार्मिक मूल संगठन के कार्यात्मक विभागों से लिये जाते हैं और प्रोजेक्ट के पूरा हो जाने पर वे अपने मूल विभागों में वापस चले जाते हैं।

इस प्रकार की संरचना व्यवस्था का प्रमुख लाभ यह है कि इससे नियमित व्यवसाय में कोई बाधा नहीं आती है। यह केवल प्रोजेक्ट के काम को समय पर एवं उसके

लक्ष्यों के संगत निष्पादन मानकों के अनुसार पूरा करने से सम्बद्ध है। प्रोजेक्ट के कार्यों का बेहतर प्रबंध और नियंत्रण होता है क्योंकि प्रोजेक्ट प्रबंधक को आवश्यक अधिकार मिले होते हैं और वह अकेले ही परिणामों के लिये उत्तरदायी होता है। लेकिन प्रोजेक्ट संगठन समस्याओं को भी पैदा कर सकता है। कार्यात्मक प्रबंधक कार्यात्मक क्षेत्रों में प्रोजेक्ट प्रबंधक के अधिकार के प्रयोग में लाने से प्रायः नाराज होते हैं और इस प्रकार संघर्ष उत्पन्न होता है। समय–समय पर कार्मिकों के प्रोजेक्ट के काम से स्थानान्तरण से कार्यात्मक विभागों के स्थायित्व में विघ्न पड़ता है। कर्मचारियों को एक प्रोजेक्ट से दूसरे प्रोजेक्ट पर बदलते रहने के कारण उनका विशिष्ट क्षेत्र के विकास में बाधा पड़ती है।

2) **मैट्रिक्स संगठन (Matrix organisation) :** यह अनुकूली संगठन ढाँचे का दूसरा प्रकार है जिसका उद्देश्य स्वायत्त प्रोजेक्ट संगठन और कार्यात्मक विशिष्टीकरण के लाभ को एक साथ प्राप्त करना है। मैट्रिक्स संगठन ढाँचे में कार्यात्मक विभाग होते हैं जिनमें विभिन्न प्रोजेक्टों में काम करने के लिये विशिष्ट कर्मचारी प्रतिनियुक्त किये जाते हैं। कई बार ये कर्मचारी एक से अधिक प्रोजेक्टों में प्रोजेक्ट प्रबंधक के व्यापक निर्देशन एवं पथप्रदर्शन में काम करते हैं। जब एक प्रोजेक्ट का काम पूरा हो जाता है तो इसमें लगे व्यक्ति अपने कार्यात्मक विभागों में वापस चले जाते हैं जहां से उन्हें फिर किसी अन्य प्रोजेक्ट में भेज दिया जाता है। यह विन्यास उन स्थितियों में उपयुक्त पाया जाता है जहां संगठन ठेके वाले प्रोजेक्ट कार्य में लगा है और अनेकों प्रोजेक्टों का प्रबंध किया जाता है, जैसे कि एक बड़ी भवन निर्माण कम्पनी या इंजीनियरिंग इकाई में।

मैट्रिक्स संगठन परिवर्तनीय दशाओं की आवश्यकताओं के लिए आदर्श रूप से उपयुक्त एक लोचनीय ढाँचा देता है। यह विभिन्न विभागों से विशिष्ट एवं तकनीकी कार्मिकों को एक जगह मिलाने में सुविधा प्रदान करता है ताकि इन्हें कई प्रोजेक्टों में प्रतिनियुक्त किया जा सके। उन्हें प्रोजेक्ट के काम में विविध जटिल समस्याओं से निपटने का बहुमूल्य अनुभव होता है। इससे सूचनाओं और निर्णयों का तत्काल आदान–प्रदान होता है क्योंकि वे प्रोजेक्ट प्रबंधक के समन्वय–अधिकार के अंतर्गत काम करते हैं।

मैट्रिक्स संगठन का सबसे बड़ा दोष यह है कि विशिष्ट कार्यात्मक विभागों से लिये गये कर्मचारी दोहरी सत्ता के अधीन होते हैं– कार्यात्मक प्रधानों एवं प्रोजेक्ट प्रबंधकों के। इस प्रकार आदेश की एकता सिद्धांत का उल्लंघन होता है। यह प्रोजेक्ट प्रबंध में दबाव एवं तनाव पैदा करता है क्योंकि यहाँ एक ही व्यक्ति एक साथ कई प्रोजेक्टों में लगा होता है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही है और कौन–सा गलतः
   - i) संगठन प्रक्रिया का परिणाम एक ''संगठन" है जो सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक साथ मिलकर काम करने वाले व्यक्तियों के एक दल से बनता है।
   - ii) आदेश की श्रृंखला सम्प्रेषण का समय इंगित नहीं करती है।
   - iii) एक संगठन का औपचारिक ढाँचा सामाजिक अथवा मनोवैज्ञानिक शक्तियों द्वारा प्रभावित नहीं होता है।
   - iv) संगठन का खंडीय ढाँचा प्राधिकार के विकेन्द्रीकरण द्वारा प्रतिलक्षित होता है।

v) प्रोजेक्ट संगठन समयबद्ध एक बार किये जाने वाले कार्यों से संबंधित है।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) एक तंत्र के रूप में, एक संगठन .... भागों से बनता है जिन्हें उप–तंत्र कहा जाता है।

ii) वह संगठन प्रक्रिया ही है जिसके द्वारा व्यक्तियों के .... और .... निश्चित होते हैं।

iii) संगठन ढाँचा .... और .... के बीच सोपानिक संबंधों की स्थापना करता है।

iv) कार्यों की मात्रा में वृद्धि के साथ एक कार्यात्मक संगठन में .... इकाइयों पर उप–इकाइयों को बढ़ाने की आवश्यकता होती है।

v) संगठन का खंडीय ढाँचा .... उद्यमों के लिये अधिक उपयुक्त है।

10.6 संगठन के सिद्धांत

संगठन के सिद्धांत एक कार्यक्षम संगठन ढाँचे के आयोजन में पथप्रदर्शक हैं। हम अब संगठन के महत्वपूर्ण सिद्धांतों का विवेचन करेंगे।

1) **उद्देश्यों की एकता (Unity of objectives) :** एक उद्यम कुछ खास उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। संगठन और इसका प्रत्येक अंग उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर निर्देशित होना चाहिए। संगठन के प्रत्येक सदस्य को इसके लक्ष्यों एवं उद्देश्यों से परिचित होना चाहिए। संगठन में उद्देश्यों की एकता का होना आवश्यक है ताकि सभी प्रयत्न निर्धारित लक्ष्यों पर केन्द्रित किये जा सके। इस सिद्धांत में इस बात की आवश्यकता है कि उद्देश्यों को स्पष्टतः प्रतिपादित किया जाए और अच्छी तरह समझा जाए।

2) **काम का विभाजन और विशिष्टीकरण** : संगठन में सम्पूर्ण काम को विभिन्न भागों में बाँटना चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति केवल एक काम के निष्पादन के लिये उत्तरदायी हो। यह विशिष्टीकरण को सुविधाजनक बनाता है, जिससे कार्यक्षमता एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है। परंतु विशिष्टीकरण का प्रत्येक क्षेत्र सभी विभागों के सभी कार्यों में समन्वय के द्वारा सम्पूर्ण एकीकृत तंत्र से परस्पर संबंधित होना चाहिए।

3) **जाँच की परिभाषा** : संगठन में प्रत्येक पद संगठन के अन्य पदों के संदर्भ में स्पष्टतः परिभाषित होना चाहिए। प्रत्येक पद को सौंपे गये कर्तव्यों और दायित्वों और इसका अन्य पदों से संबंध इस प्रकार परिभाषित किया जाना चाहिए कि कार्यों में दोहरापन न हो जाए।

4) **रेखा और स्टाफ कार्यों में अलगाव (Separation of line and staff functions) :** जब भी संभव हो, रेखा कार्यों को स्टाफ कार्यों से अलग करना चाहिए। रेखा कार्य वे हैं जो कम्पनी के प्रमुख उद्देश्यों को पूरा करते हैं। अनेकों निर्माण कम्पनियों में निर्माण एवं विक्रय विभागों को मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करने वाले विभाग के रूप में समझा जाता है और इसीलिए इन्हें रेखा कार्य कहा जाता है। कार्मिक, प्लांट का रखरखाव, वित्त, कानून आदि जैसे अन्य कार्य सहायक कार्य माने जाते हैं।

5) **आदेश की श्रृंखला या सौपानिक सिद्धांत (Chain of command or scalar principle) :** संगठन के शीर्ष भाग से निम्नतम भाग तक जाती हुई प्राधिकार रेखा

स्पष्ट होनी चाहिए। प्राधिकार का अर्थ है निर्णय लेना, निदेश देने और समन्वय करने का अधिकार। संगठन ढाँचा ऐसा होना चाहिए जो प्राधिकार के प्रत्यायोजन को आसान बनाए। शीर्ष पद से कार्यकारी पद तक स्तरों अथवा श्रेणीयों में प्रत्यायोजन से स्पष्टता प्राप्त होती है। प्राधिकार रेखा प्रमुख कार्याधिकारी से विभागीय प्रबंधकों, पर्यवेक्षकों या फोरमैनों और अंत–कर्मचारियों तक जा सकती है। आदेश की यह श्रृंखला संगठन के सोपानिक सिद्धांत के नाम से भी जानी जाती है।

6) **प्राधिकार और दायित्व की एकरूपता या सामन्जस्य का सिद्धांत** : दायित्व सर्वदा प्राधिकार के अनुरूप होना चाहिए। प्रत्येक अधीनस्थ के पास पर्याप्त प्राधिकार होने चाहिए ताकि वह अपने दायित्व को ठीक ढंग से निभा सके। इस सिद्धांत के अनुसार यदि एक बहु–प्लांट संगठन एक प्लांट प्रबंधक को सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है तो अपने दिन–प्रति दिन के कार्यों के लिए उसे कम्पनी मुख्यालय से आदेश प्राप्त करने के लिए बाध्य नहीं होना चाहिए।

7) **आदेश की एकरूपता** : संगठन में किसी भी व्यक्ति को एक से अधिक रेखा पर्यवेक्षक को प्रतिवेदन नहीं करना चाहिए। संगठन में प्रत्येक व्यक्ति को यह पता होना चाहिए कि उसे किसे प्रतिवेदन करना है और उसे कौन प्रतिवेदन करता है। साधारण शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति का केवल एक ही प्रधान होना चाहिए। कई पर्यवेक्षकों से निदेश प्राप्त करने से सम्भ्रांति, दुर्व्यवस्था, संघर्ष एवं कार्यवाही की कमी उत्पन्न हो सकती है।

8) **निर्देशन की एकरूपता** : इस सिद्धांत के अनुसार सामान्य लक्ष्यों और कार्यों के समूह का प्रबंध एक व्यक्ति के द्वारा किया जाना चाहिए। विभिन्न कार्यविधियों के एक सामान्य उद्देश्य के लिए एक प्रधान और एक ही योजना होनी चाहिए। इससे व्यापक संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में अबाध–गति से आगे बढ़ा जा सकता है।

9) **अपवाद के सिद्धांत** : इस सिद्धांत के अनुसार उच्च–स्तरीय प्रबंधकों को केवल अपवादिक मामलों पर ध्यान देना चाहिए। सभी रोजमर्रा के निर्णय निचले स्तरों पर लिये जाने चाहिए जबकि असामान्य मामलों से संबंधित समस्याएँ और नीति निर्णय उच्चस्तर के प्रबंधकों को सुपुर्द करने चाहिए।

10) **पर्यवेक्षण क्षमता का विस्तार** : पर्यवेक्षण क्षमता की सीमा से तात्पर्य व्यक्तियों की उस संख्या से है जिसे एक प्रबंधक या पर्यवेक्षक निर्देशित कर सकता है। एक प्रबंधक उपलब्ध समय और क्षमता की सीमाओं में जितने व्यक्तियों का प्रभावपूर्ण प्रबंध कर सकता है उसे उससे अधिक अधीनस्थों के पर्यवेक्षण की जिम्मेदारी नहीं दी जानी चाहिए। वास्तविक संख्या काम की प्रकृति एवं पर्यवेक्षण की गहनता अथवा आवृत्ति के अनुसार परिवर्तित हो सकती है।

11) **संतुलन का सिद्धांत** : संगठन के विभिन्न अंगों में समुचित संतुलन होना चाहिए और किसी भी कार्य को दूसरे कार्यों के मूल्य पर अनुचित महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीकरण, पर्यवेक्षण क्षमता की सीमा और सम्प्रेषण की रेखा, तथा विभागों और विभिन्न स्तर के कार्मिकों में आवंटित प्राधिकार में भी संतुलन रखना चाहिए।

12) **सम्प्रेषण** : एक संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सम्प्रेषण का एक अच्छा तंत्र आवश्यक है। निसंदेह प्राधिकार की रेखा अधोमुखी और उपरिमुखी सम्प्रेषण माध्यम उपलब्ध कराती है फिर भी अनेकों संगठनों में सम्प्रेषण में कुछ बाधायें उठ खड़ी होती हैं। वरिष्ठ अधिकारी का अपने अधीनस्थों में विश्वास और द्विदिशा सम्प्रेषण ऐसे तत्व हैं जो एक संगठन को प्रभावपूर्ण कार्यकारी तंत्र के रूप में जोड़ते हैं।

13) **लोच** : संगठन ढाँचा लोचदार होना चाहिए ताकि इसे सरलता और मितव्ययता पूर्वक कार्य की प्रकृति में परिवर्तनों एवं प्रौद्योगिकीय नवीकरणों के अनुकूल बनाया जा सके। संगठन ढाँचे में लोच मूल डिजाइन में गड़बड़ी किये बिना पर्यावरण के अनुसार परिवर्तन की क्षमता को सुनिश्चित करता है।

14) **निरंतरता** : परिवर्तन प्रकृति का नियम है। संगठन से बाहर अनेकों परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन संगठन में भी प्रतिबिम्बित होने चाहिए। इस उद्देश्य के लिए संगठन ढाँचे का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो उद्यम की आवश्यकताओं को पूरा कर सके और लम्बी अवधि के लिये इसके उद्देश्यों को प्राप्त कर सके।

10.7 नियंत्रण का विस्तार (Span of Control)

'नियंत्रण के विस्तार' को ''पर्यवेक्षण क्षमता की सीमा'' या ''प्राधिकार की सीमा" के नाम से भी जाना जाता है। साधारण शब्दों में, यह व्यक्तियों की उस संख्या की ओर संकेत करता है जिसका एक प्रबंधक प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण कर सकता है। इस प्रकार, यह उम्मीद की जाती है कि नियंत्रण क्षमता की सीमा, अर्थात् एक वरिष्ठ को प्रत्यक्ष रूप से प्रतिवेदित करने वाले अधीनस्थों की संख्या, सीमित रखी जानी चाहिए ताकि पर्यवेक्षण और नियंत्रण को प्रभावशाली बनाया जा सके। इसका कारण यह है कि कार्याधिकारियों के पास सीमित समय और क्षमता होती है।

कभी–कभी यह सुझाव दिया जाता है कि नियंत्रण क्षमता की सीमा न तो बहुत विस्तृत और न ही बहुत संकुचित होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, अधीनस्थों की संख्या बहुत अधिक या बहुत कम नहीं होनी चाहिए। कुछ विशेषज्ञों के अनुसार, आदर्श क्षमता सीमा ऊँचे स्तरों पर चार और निचले स्तरों पर आठ से बारह है। परंतु अधीनस्थों की संख्या आसानी से निश्चित नहीं की जा सकती है, क्योंकि कार्यों की प्रकृति और व्यक्तियों की क्षमता एक संगठन से दूसरे संगठन में बदलती रहती है। साथ ही, पर्यवेक्षण की वास्तविक क्षमता सीमा संगठन को विभिन्न ढंगों से प्रभावित करती है। विस्तृत क्षमता सीमा पर्यवेक्षण के छोटे स्तरों तक होती हैं और सम्प्रेषण को आसान बनाती है। परंतु सीमित समय के कारण इससे केवल सामान्य पर्यवेक्षण ही होता है। दूसरी ओर, संकुचित क्षमता सीमा में बहुस्तरीय पर्यवेक्षण की आवश्यकता होती है और इसलिए सम्प्रेषण में अधिक समय लगता है। यह अधिक खर्चीला है और सम्प्रेषण की प्रक्रिया को जटिल बनाता है। फिर भी संकुचित क्षमता सीमा प्रबंधकों को सूक्ष्म पर्यवेक्षण और नियंत्रण करने के योग्य बनाती है।

नियंत्रण के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्व : यद्यपि नियंत्रण क्षमता की सीमा की कुछ मर्यादाएँ हैं परंतु हाल के वर्षों में पूर्ण संख्या न बताने की प्रवृति पायी गयी है क्योंकि यह मान लिया गया है कि आदर्श क्षमता सीमा कई तत्वों पर आधारित है। इनमें से कुछ अधिक महत्वपूर्ण तत्वों का विवेचन नीचे किया गया है :

1) **काम की प्रकृति** : यदि काम सरल और बार–बार दोहराया जाने वाला है तो नियंत्रण क्षमता की सीमा विस्तृत हो सकती है। परंतु यदि काम में सूक्ष्म पर्यवेक्षण की आवश्यकता है तो नियंत्रण क्षमता की सीमा संकुचित होनी चाहिए।

2) **प्रबंधक की क्षमता** : कुछ प्रबंधक बड़ी संख्या में व्यक्तियों के पर्यवेक्षण में अन्य प्रबंधकों की तुलना में अधिक योग्य होते हैं। इस प्रकार एक ऐसे प्रबंधक के लिए जिसके पास नेतृत्व का गुण, निर्णय लेने की क्षमता, और सम्प्रेषण दक्षता अधिक मात्रा में है, तो नियंत्रण क्षमता की सीमा विस्तृत हो सकती है।

3) **संगठन की कार्यकुशलता** : जिन संगठनों में कार्य तंत्र कुशल हैं और कर्मचारी सक्षम हैं नियंत्रण क्षमता की सीमा ज्यादा हो सकती है।

4) **सहायक व्यक्तियों की उपलब्धता** : जहाँ पर सहायक व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है वहाँ वरिष्ठों और अधीनस्थों के बीच के सम्पर्क को कम और क्षमता सीमा को विस्तृत किया जा सकता है।

5) **पर्यवेक्षण के लिए उपलब्ध समय** : उच्च स्तरों पर नियंत्रण क्षमता को सीमा संकुचित कर दी जानी चाहिए क्योंकि शीर्ष प्रबंधकों के पास पर्यवेक्षण के लिए कम समय होता है। उन्हें अपने काम का प्रमुख भाग नियोजन, संगठन, निर्देशन और नियंत्रण में लगाना होता है।

6) **अधीनस्थों की क्षमता** : काम पर नये लगे व्यक्ति प्रशिक्षित व्यक्तियों की तुलना में, जो काम का अनुभव प्राप्त कर चुके हैं, एक पर्यवेक्षक का अधिक समय लेते हैं। वे अधीनस्थ जिनके पास अच्छा सुविचारत निर्णय, पहल और उत्तरदायित्वों की समझ है वरिष्ठ अधिकारी से कम पथप्रदर्शन लेते हैं।

7) **विकेन्द्रीकरण की मात्रा** : उस कार्याधिकारी की तुलना में जो केवल प्रोत्साहन और समयानुसार निर्देशन प्रदान करता है, एक ऐसा कार्याधिकारी जो व्यक्तिगत रूप से अनेकों निर्णय लेता है कम व्यक्तियों का पर्यवेक्षण करने में समर्थ होता है।

यह स्पष्ट होना चाहिए कि नियंत्रण क्षमता की सीमा का आकार अनेकों चरों से संबंधित है और कोई एक सीमा सभी स्थितियों में लागू नहीं होती। किसी एक विशेष संगठन में नियंत्रण क्षमता की अनुकूलतम सीमा में सम्मिलित कर्मचारियों की संख्या को विविध प्रकार के तत्व प्रभावित कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   i) आदेश की श्रृंखला संगठन के .... सिद्धांत पर आधारित है।

   ii) सामन्जस्य का सिद्धांत अधिकार और दायित्व की .... का सुझाव देता है।

   iii) उच्च स्तरीय प्रबंधकों को केवल .... मामलों पर ध्यान देने की आवश्यकता होनी चाहिए।

   iv) संगठन ढाँचा .... होना चाहिए ताकि इसे परिवर्तन के अनुकूल बनाया जा सके।

   v) एक विस्तृत नियंत्रण क्षमता सीमा का परिणाम पर्यवेक्षण का .... स्तर होता है।

2) निम्नलिखित में से कौन–सा कथन सही है और कौन सा गलतः

   i) एक संकुचित क्षमता सीमा एक विस्तृत क्षमता सीमा की तुलना में कम खर्चीली है।

   ii) आदेश की एकता का अर्थ है कि एक प्रबंधक को अपने सभी अधीनस्थों को एक समान निर्देश ही जारी करने चाहिए।

   iii) कार्मिक कार्य रेखा नहीं बल्कि सहायक कार्य है।

iv) यदि ज्यादा सहायक व्यक्ति हैं तो नियंत्रण क्षमता की सीमा को विस्तुत किया जा सकता है।

v) एक विभाग के लिए, जिसमें सभी नव–नियुक्त कर्मचारी हैं, क्षमता सीमा को विस्तुत रखना आवश्यक है।

10.8 संगठन चार्ट

एक संगठन चार्ट एक संगठन की प्रमुख क्रियाओं और उनके संबंधों सहित महत्वपूर्ण पहलूओं का आरेखीय प्रदर्शन है। यह कम्पनी संगठन, इसके कार्यों, प्राधिकार की रेखाओं और पदों की स्थिति की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों में, यह उद्यम में पदों और उनमें निहित उत्तरदायित्व की औपचारिक रेखाओं का रेखाचित्रीय वर्णन है। यह एक उद्यम के विभिन्न विभागों या खण्डों के आपसी संबंधों और साथ ही विभिन्न स्तरों के कार्याधिकारियों और अधीनस्थों के बीच के संबंधों को एक विहंगम दृष्टि प्रदान करता है। यह प्रत्येक कार्याधिकारी और कर्मचारी को यह समझने योग्य बनाता है कि संगठन में उसकी क्या स्थिति है और वह किस के प्रति उत्तरदायी है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एक संगठन चार्ट में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं:

1) यह एक आरेखीय प्रदर्शन है।
2) यह संगठन में प्राधिकार की प्रमुख रेखाओं को दर्शाता है।
3) यह विभिन्न कार्यों और संबंधों की अन्योन्य क्रिया को दर्शाता है।
4) यह सम्प्रेषण के माध्यमों की ओर इंगित करता है।

संगठन चार्ट और संगठन ढाँचे में संभ्रान्तियाँ नहीं होनी चाहिए। एक संगठन चार्ट केवल एक अभिलेख मात्र है जो उस औपचारिक संगठनात्मक संबंधों को स्पष्ट करता है जिसे प्रबंध बनाये रखना चाहती है। इसलिए यह प्रधानतः प्रदर्शन की एक तकनीक है। यह विभिन्न व्यक्तियों और पदों के बीच प्राधिकार और दायित्व की रेखाओं को आरेखीय रूप में प्रस्तुत करता है। यह एक कार्मिक चार्ट अथवा कार्यात्मक चार्ट हो सकता है। कार्मिक संगठन चार्ट विभिन्न व्यक्तियों के पदों में संबंध प्रदर्शित करता है। कार्यात्मक संगठन चार्ट संगठन में प्रत्येक इकाई और उप–इकाई के कार्य अथवा कार्यकलाप दर्शाता है।

संगठन चार्ट के लाभ

एक संगठन चार्ट के निम्नलिखित लाभ हैं:

1) यह प्रशासन का एक औजार है जो रेखाचित्र के माध्यम से कर्मचारियों को यह बतलाता है कि सम्पूर्ण संगठन में उनके पद किस प्रकार ठीक बैठते हैं और वे किस प्रकार एक–दूसरे से संबंधित हैं।

2) यह एक दृष्टि में प्राधिकार और दायित्व की रेखाओं को दिखलाता है। यह एक विश्वसनीय रेखाचित्र है जो यह दिखाता है कि पदों का विन्यास किस प्रकार किया गया है। इससे विभिन्न व्यक्ति अपने प्राधिकार की सीमा का बोध कर सकते हैं और यह देख सकते हैं कि उनके सहयोगी कौन हैं, उन्हें किन को प्रतिवेदन करना है, और किन से उन्हें आदेश प्राप्त करना है।

3) यह नए कर्मचारियों के लिए संगठन ढाँचा और इसकी विभिन्न इकाइयों और उपइकाइयों में परस्पर संबंध समझने में एक बहुमूल्य प्रदर्शक के रूप में कार्य करता है।

4) यह कार्मिक वर्गीकरण और मूल्यांकन व्यवस्था की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

5) असंगतियों और कमियों को दर्शा कर यह संगठनात्मक सुधारों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। चित्र में दर्शाए सम्पूर्ण संगठन पर दृष्टिपात से प्रबंध काम और कार्यों के वितरण में अभीष्ट अंतरों और अतिव्याप्ति आदि का पता लगा सकता है।

संगठन चार्ट की सीमाएँ यद्यपि संगठन चार्ट प्रबंध का एक महत्वपूर्ण औजार है, इसका होना अपने आप ही संगठन की प्रभावोत्पादकता को सुनिश्चित नहीं करता है क्योंकि इसकी निम्नलिखित सीमाएँ हैं :

1) संगठन चार्ट केवल औपचारिक संबंधों को दर्शाता है और संगठन के अंतर्गत के अनौपचारिक संबंधों को दिखाने में असमर्थ होता है। आधुनिक उद्यमों में अनौपचारिक संबंध संगठनों के परिचालन को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं।

2) यह प्राधिकार की रेखाओं को दिखाता है, परंतु एक विशेष कार्याधिकारी किस सीमा तक प्राधिकार का प्रयोग कर सकता है, वह अपने कार्यों के लिए किस सीमा तक उत्तरदायी है, आदि प्रश्नों के उत्तर देने के योग्य नहीं हैं।

3) यह संबंधों में दृढ़ता पैदा करता है। सम्पूर्ण व्यवस्था में विघ्न डाले बिना नवीनीकरण सम्भव नहीं है।

4) दोषपूर्ण संगठन चार्ट के सदस्यों में सम्भ्रान्ति एवं गलतफहमी पैदा कर सकता है। इसके अलावा यह वरिष्ठता और निकृष्ठता की भावना को जन्म देता है जिससे संगठन में संघर्ष पैदा होता है।

5) यह उन संबंधों को नहीं दिखाता जो संगठन में वास्तव में होते हैं बल्कि ''तथाकथित संबंधों'' को दिखाता है।

10.9 संगठनात्मक नियम–पुस्तिका (Organisational Manual)

एक संगठन चार्ट से पता चलता है कि कौन किस पर अधिकार रखता है, परंतु संगठन में प्रत्येक व्यक्ति के जॉब पद द्वारा लागू कर्त्तव्यों के प्राधिकार की सीमा स्पष्ट नहीं करता। इसी लिए बड़े संगठन नियम पुस्तिकाएँ बनाते हैं जिसमें संगठन चार्टों के अतिरिक्त जॉब का विवरण एवं अन्य सूचनाएँ सम्मिलित होती हैं। जॉब विवरणों में कर्त्तव्यों और दायित्वों के संदर्भ में जॉब विषयों के तथ्यपूर्ण कथन होते हैं। एक संगठनात्मक नियम–पुस्तिका संगठन के सदस्यों के लिये प्राधिकारिक प्रदर्शक है। इसमे उच्च प्रबंधकीय निर्णयों, मानक कार्यप्रणालियों और कार्यविधियों के अभिलेख तथा विभिन्न जॉबों का विवरण होता है। नियम पुस्तिका में इस प्रकार की सूचनाओं के उपलब्ध होने के कारण कर्मचारियों को निर्देश एवं पथ–प्रदर्शन के लिए अपने वरिष्ठों के पास जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है जिसके कारण काम में बाधा पड़ती है और परिणामतः वरिष्ठों एवं अधीनस्थों के समय और शक्ति की क्षति होती है।

10.9.1 नियम–पुस्तिकाओं का महत्व

एक नियम–पुस्तिका प्रबंध का बहुमूल्य सहायक हो सकता है और यह पुस्तिका के बनाने में लगने वाले मेहनत और धन को उचित ठहराता है। एक अच्छी नियम–पुस्तिका की उपलब्धि व्यक्तियों को अपने काम के दायित्वों एवं इनके संगठन में अन्य कामों से संबंध को निश्चित करने में सहायता पहुंचाती है। इससे अधिकार–क्षेत्र से सम्बद्ध संघर्ष और दोहरेपन से बचा जा सकता है। इससे अधिकार के स्त्रोत और सीमाएँ भी स्पष्ट होती हैं।

इस प्रकार यह निर्देशों को निश्चितता प्रदान करने में सहायक हो सकती है और स्पष्ट करती है कि किस प्रकार प्रत्येक कर्मचारी और उसका काम सम्पूर्ण संगठन में ठीक बैठता है और किस प्रकार वह संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में योगदान कर सकता है और अन्य कर्मचारियों से अच्छे सम्बंध बनाये रख सकता है। नियम–पुस्तिका के संदर्भ में गलतफहमियों को शीघ्रता से हटाया जा सकता है। यह प्रबंधकों को एक ही सूचना के बार–बार दोहराने से छुटकारा दिलाता है। यह कार्यविधियों एवं व्यवहारों को एकरूपता और संगति प्रदान करता है। इसमें कामों से संबंधित निश्चित परिपाटी और कार्यव्यवहार लिखित रूप में होते हैं इसलिए यह नये कर्मचारियों का प्रशिक्षण आसान बनाता है। चूंकि नियम पुस्तिकाएँ आवधिक रूप से या प्रत्येक प्रमुख परिवर्तनों के बाद संशोधित की जाती हैं, ये उन कर्मचारियों के लिए प्रभावपूर्ण पुनश्चर्या पाठयक्रम के रूप में काम करती हैं जो संस्था में कुछ समय से काम कर रहे हैं। नियम–पुस्तिकाओं के प्रयोग से प्राधिकार के प्रत्यायोजन और प्रबंध को अपवाद स्वरूप बढ़ावा मिलता है।

10.9.2 नियम–पुस्तिकाओं के प्रकार

एक संगठन विभिन्न सामग्री और उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए नियम–पुस्तिकाएँ बना सकता है, जैसे 1) नीति नियम–पुस्तिका, 2) कार्य नियम–पुस्तिका, 3) संगठन नियम–पुस्तिका, 4) नियम और विनियम नियम–पुस्तिका, और 5) विभागीय नियम–पुस्तिका। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

1) **नीति नियम–पुस्तिका** : यह उद्यम की नीतियों को बतलाने के लिये बनाई जाती हैं। यह कार्य का मूल पथप्रदर्शक है। नीति नियम–पुस्तिका व्यापक रूपरेखा का वर्णन करती है जिसके अंतर्गत ही कार्यकलाप किये जाते हैं और इस प्रकार कुछ निश्चित स्थितियों में उठाये जाने वाले प्रबंधकीय कार्यों को विस्तृत दिशा प्रदान करता है। इसमें उद्यम के प्रबंधकों के निर्णय, प्रस्ताव. और उद्घोषणाएँ सन्निहित हैं।

2) **कार्य नियम–पुस्तिका** : नियम–पुस्तिका का उद्देश्य कर्मचारियों को स्थापित विधियों, कार्यविधियों और निष्पादन के इच्छित मानकों के बारे में सूचित करना है। यह अधिकृत उपायों की एक सूची प्रदान करता है और उन्हें प्रत्येक विभाग और खंड के रेखाचित्र, संक्षिप्त विवरण चार्ट, आदि से अनपूरित करता है।

3) **संगठन नियम–पुस्तिका** : यह विभिन्न विभागों और उनके उपखंडों के कार्यों और दायित्वों को इंगित करते हुए संगठन की व्यवस्था को बतलाता है। यह उद्यम में काम करने वाले विभिन्न व्यक्तियों के दायित्वों और अधिकारों की औपचारिक श्रृंखला का प्रदर्शन है। संगठन में संघर्षों से बचने के उद्देश्य से प्रत्येक कार्याधिकारी के अधिकार और दायित्व का स्तर नियम–पुस्तिका में दिखाया जाता है। संगठन नियम–पुस्तिका में पदोन्नति के चार्ट भी सम्मिलित किये जा सकते हैं जो यह दिखाये कि सम्पूर्ण संगठन में पदोन्नति के सम्भावित मार्ग क्या हैं।

4) **नियम और विनियम नियम–पुस्तिका** : यह नियम–पुस्तिका कार्य संबंधी नियमों और रोजगार विनियमों से संबंधित सूचना प्रदान करता है। इसमें काम के घंटे, कार्य समय, छुट्टी लेने की कार्यविधि आदि से संबंधित विनियम होते हैं। यह वास्तव में रोजगार नियमों की हस्त–पुस्तिका है। इसमें पुस्तकालय, जलपान गृह, मनोरंजन क्लब आदि के प्रयोग से संबंधित नियमों सहित कर्मचारियों के लाभ की विभिन्न योजनाएँ भी सम्मिलित हो सकती हैं।

5) **विभागीय नियम–पुस्तिका :** इस नियम–पुस्तिका में विभागीय कार्यों से सम्बद्ध कार्यविधियाँ सम्मिलित होती हैं। यह विभाग की आंतरिक नीतियों और कार्यकारी नियमों को विस्तृत रूप में बताता है। यह चार्ट और रेखाचित्रों द्वारा अंतर्विभागीय संबंधों को स्पष्ट करता है। उदाहरण के लिए, फाइलिंग नियम–पुस्तिका फाइलिंग विभाग का संगठन, विभिन्न कामों के दायित्व, कर्मचारियों में परस्पर संबंध, और विभिन्न क्रियाओं के लिये मानक कार्यविधियाँ सम्मिलित होती हैं। इसी प्रकार, अन्य विभागों की भी ऐसी नियम–पुस्तिकाएँ हो सकती हैं।

10.9.3 नियम–पुस्तिका के गुण और दोष

नियम–पुस्तिका के गुण :

1) इसमें कार्यविधि संबंधी नियम एवं विनियम तथा विभिन्न अन्य सूचनाएँ लिखित रूप में होती हैं। इन्हें बार–बार कर्मचारियों को समझाने की आवश्यकता नहीं होती है।

2) यह उद्यम के आंतरिक संगठन से सम्बद्ध प्रमुख निर्णयों के लिये एक तत्पर संदर्भ प्रस्तुत करता है।

3) यह प्राधिकार के स्त्रोतों को सही ढंग से दिखाकर अधिकार संबंधी संघर्षों को रोकता है।

4) यह नये कर्मचारियों को मानक कार्यविधि और व्यवहार कम से कम समय में सीखने लायक बनाता है। उन्हें अपने कामों के दायित्वों और उनके अन्य कार्यों से संबंधों की स्पष्ट समझ होती है।

5) यह शीघ्र निर्णय सम्भव बनाता है क्योंकि निर्देश एवं नीतियाँ निश्चित रूप में बतला दी जाती है।

नियम–पुस्तिका के दोष :

1) छोटे उद्यम नियम–पुस्तिका नहीं रख सकते क्योंकि यह खर्चीली और समय लगने वाली प्रक्रिया है।

2) नियम–पुस्तिकाएँ संगठन के कार्यों में अपरिवर्तनीयता पैदा कर सकती हैं क्योंकि इसमें मानक कार्यविधि और व्यवहार लिखित रूप में होते हैं। यह व्यक्तिगत पहल और स्वनिर्णय को बहुत कम अवसर देती हैं।

3) नियम–पुस्तिकाएँ उन संबंधों को लिखित रूप में प्रस्तुत कर सकती हैं जिन्हें कोई भी, स्पष्ट नहीं देखना चाहेगा।

10.10 औपचारिक और अनौपचारिक संगठन (Formal and Informal Organisation)

औपचारिक संगठन एक नियोजित ढाँचा है जो व्यक्तियों, दलों, वर्गों, इकाइयों, विभागों और खंडों में संबंधों के औपचारिक रूप से स्थापित प्रारूप को प्रदर्शित करता है ताकि उद्यम के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। विशिष्टतः इसे यह चार्ट के रूप में दिखाया जाता है और इसे संगठन नियम–पुस्तिकाओं, स्थिति विवरणों और अन्य औपचारिक प्रलेखों में सम्मिलित किया जाता है। औपचारिक संगठन एक विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करता है और कुछ नियम कार्यों का और उनके आपसी संबंधों का सीमांकन करता है। औपचारिक संगठन को किसी दिये गये उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में दो या अधिक व्यक्तियों के कार्यकलाप के चेतनायुक्त समन्वित तंत्र के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह एक साथ मिलकर काम करने

वाले व्यक्तियों का एक दल है जो एक ऐसे उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयास करते हैं और इन व्यक्तियों और संगठन दोनों के लिये ही लाभकारी हैं। साथ ही, स्थायी और संगत संबंधों को बढ़ावा देते हैं और नियोजन और नियंत्रण के कार्यों को सुविधाजनक बनाते हैं। औपचारिक संगठन की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है।

1) औपचारिक संबंधों और कर्त्तव्यों, संगठन चार्टों, जॉब विवरणों और पद–प्रदर्शकों के प्रतिरूप के रूप में, और

2) औपचारिक संबंधों की संरचना के अंतर्गत कर्मचारी आचरण का पथप्रदर्शन करने के लिये प्रबंध द्वारा अपनाये गये औपचारिक नियमों, नीतियों, कार्यविधियों और ऐसे ही अन्य तरीकों के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। औपचारिक संगठन उद्देश्यों और नीतियों का निर्धारण सुविधाजनक बनाता है। सम्प्रेषण, प्राधिकार के प्रत्यायोजन, और समन्वय निहित रूप के अनुसार होता है। वास्तव में, औपचारिक ढाँचा संगठन में काम करने वाले व्यक्तियों के कार्यक्षेत्र को निश्चित रूप से परिभाषित करके सीमित है।

अनौपचारिक संगठन में व्यक्तियों के परस्पर संबंधों को रुचि, व्यक्तिगत अभिवृत्ति, पूर्वधारणा पसंद, नापसंद, काम का स्थान, काम की समानता, आदि के आधार पर उल्लेख करता है। अनौपचारिक संगठन औपचारिक ढाँचे की सीमाओं के कारण जन्म लेता है। यह काम की परिस्थितियों में व्यक्तियों का प्राकृतिक रूप से दलों में बँटना इंगित करता है। एक संगठन में छोटे दलों का प्रादुर्भाव प्राकृतिक घटना है। अनौपचारिक दलों में दोहरापन सम्भव है क्योंकि एक ही व्यक्ति दो या अधिक अनौपचारिक दलों का सदस्य हो सकता है। अनेक स्थितियों में, अनौपचारिक दल औपचारिक संगठन के सहायक और अनुपूरक के रूप में आते हैं। वास्तव में, औपचारिक और अनौपचारिक संगठन एक दूसरे से जटिल रूप से संबंधित हैं। संगठनात्मक जीवन के इन दो पहलुओं में अंतर केवल विश्लेषणात्मक हैं और इसे अनावश्यक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।

10.10.1 औपचारिक और अनौपचारिक संगठनों में अंतर

औपचारिक और अनौपचारिक संगठनों में निम्नलिखित आधारों पर अंतर किया जा सकता है:

1) **उद्यम** : औपचारिक संगठन सजग प्रबंधकीय निर्णयों द्वारा बनाये जाते हैं। परंतु व्यक्तियों के एक दूसरे से संबंधित होने एवं परस्पर अंतःक्रिया की प्राकृतिक प्रवृत्ति के कारण अनौपचारिक संगठन औपचारिक संगठन के अंतर्गत स्वतः ही बन जाते हैं। अनौपचारिक दलों के बनने या समाप्त होने में प्रबंध का कोई हाथ नहीं होता है।

2) **उद्देश्य** : औपचारिक संगठन किन्हीं सुपरिभाषित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये बनाये जाते हैं। परंतु अनौपचारिक संगठन, संगठन के सदस्यों द्वारा अपनी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक संतुष्टि के लिये बनाये जाते हैं।

3) **कार्यकलाप** : औपचारिक संगठन की स्थिति में कार्यकलाप का पृथक्ककरण एवं एकीकरण उद्यम के उद्देश्यों के संदर्भ में किया जाता है और उन्हें सामान्तर आधार पर कार्य इकाइयों या विभागों का औपचारिक रूप दिया जाता है। अनौपचारिक संगठन की स्थिति में कोई विशिष्ट कार्यकलाप नहीं होते हैं। वे समय–समय पर व्यक्तियों की अंतःक्रियाओं और भावनाओं के परिणामस्वरूप सामने आते हैं। अनौपचारिक दल सामान्य मूल्यों, भाषा, संस्कृति या अन्य ऐसे ही तत्वों पर आधारित हो सकते हैं।

4) **ढाँचा** : औपचारिक संगठन का ढाँचा सौपानिक एवं पिरामिड–स्वरूप है जिसमें सुपरिभाषित पद, भूमिका एवं वरिष्ठ–अधीनस्थ संबंध होते हैं। यह नीतियों, कार्यविधियों और नियमों के एक सेट द्वारा संगठन में अनुशासन लागू करता है और अधिकार पर आधारित पदों का पृथक्कीकरण, अधोमुखी और बहिर्मुखी सम्प्रेषण व्यवस्था, आदि पर बल देता है। दूसरी ओर, अनौपचारिक संगठन गैर–सौपानिक होता है, यह अंर्तव्यक्तिगत संबंधों के एक जटिल सामाजिक तंत्र के समान दिखाई देता है। अनौपचारिक संगठन का ढाँचा अस्पष्ट होता है जिसमें व्यवहार के सिद्धान्त गैर लिखित होते हैं और उन्हें केवल सहमति द्वारा लागू किया जा सकता है। सम्प्रेषण अनौपचारिक एवं बहु–आयामीय होता है। इसमें स्पष्ट रूप से पदों में अंतर नहीं किया जाता है।

5) **सदस्यता** : एक औपचारिक संगठन में प्रत्येक व्यक्ति केवल एक कार्य दल का सदस्य होता है और एक ही वरिष्ठ के अधीन कार्य करता है। लेकिन एक अनौपचारिक संगठन में एक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार एक से अधिक दलों का सदस्य हो सकता है। वह एक दल में नेता एवं दूसरे में अनुगामी हो सकता है। इसमें सदस्यता के कठोर नियम नहीं हैं।

6) **पूर्वाभिमुखीकरण** : औपचारिक संगठन की स्थिति में मूल्य, लक्ष्य और काम प्रधानतः आर्थिक और तकनीकी होते हैं और उनका संबंध उत्पादकता, लाभकारिता, कार्य कुशलता, उत्तरजीविता और विकास से होता है। परंतु अनौपचारिक संगठन की स्थिति में मूल्य, लक्ष्य और काम प्रधानतया मनोवैज्ञानिक–सामाजिक होते हैं और व्यक्तियों तथा दलों की संतुष्टि, आत्मीयता, एकसमता और भिन्नता के इर्द–गिर्द केन्द्रित होते हैं।

7) **आचरण के मानक** : एक औपचारिक संगठन में व्यक्ति अपने काम के दौरान नियत तरीके से आचरण करने के लिये बाध्य होते हैं। उनसे विवेकपूर्ण आचरण की आशा की जाती है। आचरण में मानकों के विचलनों पर संगठनों के नियमों और विनियमों के अनुसार विचार किया जाता है। संगठन में पुरस्कार और दंड की भी व्यवस्था होती है। लेकिन अनौपचारिक संगठन की स्थिति में व्यक्तिगत और दलगत आचरण एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा, आचरण और अधिक प्राकृतिक और सामाजिक होता है। अनौपचारिक दल अपने अलग आचरण के मानक और पुरस्कार एवं दंड की व्यवस्था विकसित करते हैं। पुरस्कार दल की निरंतर सदस्यता, सामाजिक स्तर, पहचान, आदि का रूप ले सकता है। दूसरी ओर, दंडों में दल के द्वारा आलोचना, दल से अलगाव, आदि सम्मिलित हैं।

10.10.2 अनौपचारिक संगठन की विशेषताएँ

अनौपचारिक संगठन में प्राधिकार–दायित्व संबंध, सम्प्रेषण के माध्यम, समन्वय का प्रतिरूप, आदि पूर्व नियत नहीं होते हैं। इस प्रकार का संगठन बिना किसी संरचित व्यवस्था के कार्य करता है। अनौपचारिक संगठन प्रायः औपचारिक संगठन के साथ अंतःक्रिया करता है। यह औपचारिक संगठन को प्रभावित करता है और उससे प्रभावित होता है। औपचारिक संगठन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:

1) **प्राधिकार** : अनौपचारिक संगठन में संबंधों का एक जाल होता है जो संबंधों के औपचारिक रूप से निर्धारित प्रतिरूप के आर–पार जा सकता है। अनौपचारिक संगठन की अपना स्वयं की आचार संहिता, सम्प्रेषण तंत्र, और पुरस्कार एवं दंड की

व्यवस्था होती है। एक अनौपचारिक संगठन में प्राधिकार व्यक्तिगत होता है न कि पदगत, जैसा कि एक औपचारिक संगठन में पाया जाता है। अनौपचारिक संगठन में अधिकार या शक्ति अर्जित की जाती है अथवा दी जाती है न कि प्रत्यायोजित की जाती है। इसलिए यह आदेश की अधिकारिक श्रृंखला का अनुगमन नहीं करती है। इसमें समान स्तर पर काम करने वाले व्यक्तियों के आने की संभावना अधिक है, तुलना में औपचारिक सोपान में वरिष्ठों के आने से और यह संगठनात्मक अधिकार रेखा को आर–पार करते हुए अन्य विभागों में जा सकता है। प्रायः यह औपचारिक प्राधिकार की तुलना में अधिक अस्थायी है क्योंकि यह लोगों की भावनाओं पर आधारित है। इसकी व्यक्तिनिष्ठ प्रकृति के कारण प्रबंध व्यवस्था द्वारा इसका, औपचारिक संगठन की भांति, नियंत्रण नहीं हो सकता।

2) **उद्देश्य** : अनौपचारिक दल अपना लक्ष्य स्वयं बनाते हैं जो इनके विशेष हितों को प्रतिबिम्बित करता है। दल के सदस्य दल के उद्देश्यों के लिए समर्पित होते हैं। दलगत संयोगशीलता के परिणामस्वरूप दल एकीकृत रूप में कार्य करता है। यह संयोगशीलता दलगत उद्देश्यों द्वारा व्यक्तिगत आवश्यकताओं की संतुष्टि में दी जाने वाली सहायता की सीमा का परिणाम है। इसलिए दलगत उद्देश्यों को दल के सदस्यों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं से संबंधित किया जाना चाहिए।

3) **सम्प्रेषण** : अनौपचारिक संगठन के बनने का प्रमुख कारण औपचारिक सम्प्रेषण–माध्यम की कमजोरियाँ हैं। औपचारिक सम्प्रेषण–माध्यम अपर्याप्त हो सकते हैं अथवा धीमे हो सकते हैं तेज सम्प्रेषण की आवश्यकता अनौपचारिक सम्प्रेषण–माध्यम को जन्म दे सकती हैं। अनौपचारिक सम्प्रेषण बहुत ही तेज हो सकता है परंतु इसका सबसे बड़ा खतरा यह है कि इससे अफवाहें पैदा हो सकती हैं। अफवाहें संगठन के हितों के लिये नुकसानदायक सिद्ध हो सकती है।

4) **नेतृत्व** : अनौपचारिक दल का अपना अलग नेता होता है। एक अनौपचारिक नेता का, जिसके अंतर्गत दल के सदस्य काम कर रहे हैं, वरिष्ठ होना जरूरी नहीं है। एक अनौपचारिक दल का नेता निम्नलिखित कार्य करता हैः 1) वह दल के सदस्यों में सहमति को आसान बनाता है, 2) वह कार्य प्रारम्भ करता है, और 3) वह बाह्य जगत के साथ सम्पर्क बनाता है। यदि औपचारिक नेता इन कार्यों को करने में समर्थ है तो वह एक अनौपचारिक नेता के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है। कर्मचारी उसके पास अपनी व्यक्तिगत समस्याओं और परामर्श आदि के लिये जाएँगे। अनौपचारिक नेतृत्व को निर्धारित करने वाले प्रमुख तत्व उम्र, वरिष्ठता, काम का स्थान, तकनीकी क्षमता, आदि हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जो व्यक्ति अनौपचारिक नेता के रूप में उभर कर आते हैं वे दल के अन्य सदस्यों द्वारा दल के लक्ष्यों को प्राप्त करवाने वाले सर्वोत्तम व्यक्ति समझे जाते हैं। विभिन्न उद्देश्यों के लिये दल के कई नेता हो सकते हैं। उदाहरण के लिए दल का एक काम करवाने वाला नेता हो सकता है जिसका कार्य दल को उद्देश्यों की ओर अग्रसर करना है, और एक मानवीय संबंध नेता हो सकता है जिसका कार्य सदस्यों में सहकारिता को बढ़ावा देना होगा।

10.10.3 अनौपचारिक संगठन के कार्य

अनौपचारिक संगठन एक मनोवैज्ञानिक–सामाजिक तंत्र है और संगठन की निम्न ढंग से सहायता करता हैः

1) **प्रबंधकीय क्षमताओं में अन्तरालों को भरना** : यदि प्रबंधकों की क्षमताओं में कुछ अंतर हैं तो अनौपचारिक संगठन उन्हें पूरा कर सकता है। उदाहरण के लिए, यदि एक प्रबंध

ाक नियोजन में कमजोर है तो उसके अधीनस्थ अनौपचारिक रूप से उसकी इस स्थिति में सहायता कर सकते हैं।

2) **कामगत समस्याओं का समाधान करना** : अनौपचारिक संगठन सदस्यों की कामगत समस्याओं के समाधान में सहायता पहुँचाते हैं। यह ज्ञान के आदान–प्रदान और निर्णय लेने के अवसर देता है जो कई (कार्यों) जॉब को प्रभावित कर सकता है।

3) **श्रेष्ठ समन्वय** : अनौपचारिक संगठन लघु–मार्ग बना लेते हैं और लालफीताशाही को समाप्त कर देते हैं। वे सूचनाओं के निर्विघ्न प्रवाह तथा शीघ्र निर्गमन को सुविधाजनक बनाते हैं। ये सभी बातें विभिन्न व्यक्तियों और विभागों में श्रेष्ठ समन्वय को सुनिश्चित करते हैं।

4) **सम्प्रेषण का माध्यम** : अनौपचारिक दल संगठन में उठने वाली सम्प्रेषण रिक्तताओं को प्रायः पूरा करते हैं। अनौपचारिक सम्प्रेषण सौपानिक और विभागीय सीमाओं को पार करता हुआ सूचनाओं को अधिक गतिपूर्वक ढंग से आगे बढ़ाता है। प्रबंध अनौपचारिक माध्यमों का प्रयोग कर्मचारियों से सूचनाओं की भागीदारी और प्रबंधकीय प्रस्तावों पर उनकी प्रतिक्रिया जानने के लिये कर सकता है।

5) **प्रबंधकों पर रोक** : अनौपचारिक दल प्रबंधकों को प्राधिकार की सीमाओं का उल्लंघन नहीं करने देते। वे प्रबंधकों को असीमित शक्ति का प्रयोग और शक्ति का अन्यायपूर्ण प्रयोग करने से रोकते हैं।

6) **श्रेष्ठ संबंध** : अनौपचारिक सम्पर्कों के माध्यम से एक प्रबंधक अपने अधीनस्थों के साथ अच्छे संबंध बना सकता है। वह अनौपचारिक नेताओं से विचार–विमर्श कर सकता है और कर्मचारियों से काम पूरा कराने में उनका सहयोग प्राप्त कर सकता है।

7) **आचरण के मानक** : अनौपचारिक दल आचरण के कुछ मानक बना लेते हैं जो अच्छे और बुरे आचरण में तथा उचित और अनुचित कार्यकलाप में अंतर करते हैं। ये संगठन के कर्मचारियों में अनुशासन और व्यवस्था कायम करते हैं।

8) **भावी कार्यकारियों का विकास** : अनौपचारिक दल प्रतिभाशाली कर्मचारियों को अपना नेता मानते हैं। ऐसे नेता प्रबंध द्वारा भविष्य में निम्न स्तर के कार्यकारी खाली पदों को भरने के लिए चुने जा सकते हैं।

10.10.4 अनौपचारिक संगठन की समस्याएँ

अनौपचारिक दलों के नकारात्मक पहलू भी हैं। ये संगठन के लिए निम्न प्रकार की समस्याओं को जन्म दे सकते हैं :

1) **अनौपचारिक नेताओं का नकारात्मक रवैया** : अनौपचारिक नेता संगठन के लिये समस्याओं को पैदा करने वाला साबित हो सकता है। अपना प्रभाव बढ़ाने के लिये वह प्रबंध की नीतियों के खिलाफ काम कर सकता है और अपने अनुयायियों के आचरण को तोड़–मरोड़ सकता है। इस प्रकार वह प्रबंध और कर्मचारियों के बीच संघर्ष का एक कारण हो सकता है। वह अपने अनुयायियों को संगठन के हितों के खिलाफ काम करने के लिये उत्तेजित कर सकता है। यदि इस प्रकार के नेता को पदोन्नति द्वारा कार्यकारी का दर्जा दे दिया जाता है तो वह कामचोर तथा एक हेकड़ी बाज और निरंकुश अधिकारी साबित हो सकता है।

2) **अनुरूपता** : अनौपचारिक दल अनुरूपता प्राप्त करने के लिये अपने सदस्यों पर दबाव डालते हैं। सदस्य अपने दल के प्रति इतने अधिक वफादार हो सकते हैं कि दल के

आचरण–मानकी को मानना उनके जीवन का एक अंग हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि सदस्य दल नेता के इच्छित नियंत्रण के अधीन हो जाते हैं जो दल को स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों की ओर ले जा सकता है। इससे दल के सदस्यों पर संगठन की नीतियों और कार्य पद्धतियों का प्रभाव कम हो सकता है।

3) **परिवर्तन का विरोध** : अनौपचारिक दल सामान्यतः परिवर्तन के विरोध की प्रवृति रखते हैं। परिवर्तन नए कौशलों की माँग करता है जबकि ये दल यथापूर्व स्थिति बनाए रखना चाहते हैं। कई बार ये दल प्रबंध द्वारा प्रस्तावित परिवर्तनों पर अशांतिपूर्ण प्रतिक्रिया देते हैं। इससे नई विचारधाराओं को लागू करने और इस प्रकार संगठन में संवृद्धि में बाधा आती है।

4) **अफवाह** : अनौपचारिक सम्प्रेषण अफवाहों को पैदा कर सकता है। जिससे व्यक्तियों में संघर्ष और गलतफहमी हो सकती है। अफवाह जैसे एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचती है बदलती जाती है। इसका सामान्य विषय तो वही रह सकता है परंतु विवरण नहीं रह पाता। अफवाह एक मुँह से दूसरे मुँह तक जाते हुए विकृत और परिवर्तित हो जाती है। यह कर्मचारी की उत्सुकता, असुरक्षा और संगठन की कमजोर सम्प्रेषण व्यवस्था के कारण पैदा हो सकती है। अफवाहें संगठन के लिए बहुत ही खतरनाक साबित हो सकती हैं।

5) **भूमिका–संघर्ष** : अनौपचारिक दल का प्रत्येक सदस्य औपचारिक संगठन का भी सदस्य होता है। कई बार भूमिका–संघर्ष उठ सकते हैं क्योंकि दोनों संगठनों के विचार, अपेक्षाएँ एवं आवश्यकताएँ एक–दूसरे के विपरीत हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति अपने अधिकारी के औपचारिक निर्देशों का पालन करना चाहता है परंतु वह अनौपचारिक नेता द्वारा अनौपचारिक मानकों को मानने के लिये मजबूर किया जा सकता है। इस प्रकार औपचारिक और अनौपचारिक भूमिकाओं में संघर्षों के कारण संगठन के हितों को नुकसान पहुँच सकता है।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत :

   i) एक संगठन चार्ट सम्प्रेषण की रेखाओं और साथ ही प्राधिकार की रेखाओं को दिखाता है।

   ii) संगठन चार्ट में औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही संबंधों को दर्शाया गया है।

   iii) संगठन नियम–पुस्तिका की विद्यमानता प्रबंधकों को उनके अपने अधीनस्थों को निर्देश जारी करने के दायित्व से पूर्णतः मुक्ति दिला सकती है।

   iv) औपचारिक संगठन सजग प्रबंधकीय निर्णयों द्वारा बनाया जाता है।

   v) एक संगठन में अनौपचारिक दलों में एक ही विभाग से लिये गये सदस्य होते हैं।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   i) संगठन नियम पुस्तिकाएँ कर्मचारियों को मानक .... और .... को शीघ्रता पूर्वक सीखने के योग्य बनाती हैं।

   ii) एक संगठन चार्ट प्राधिकार की .... दिखाता है परंतु विभिन्न प्रबंधकीय पदों से सम्बद्ध प्राधिकार .... को नहीं।

iii) औपचारिक संगठन विशिष्टतः संगठनात्मक .... में प्रतिबिम्बित होता है।

iv) अनौपचारिक संगठन .... और की सीमाओं के आर–पार जाता है।

v) एक औपचारिक संगठन में प्रत्येक व्यक्ति केवल एक .... से संबंधित होता है।

10.11 सारांश

प्रबंध के एक कार्य के रूप में संगठन बनाने का अर्थ किये जाने वाले कार्यकलाप के अभिनिर्धारण एवं वर्गीकरण तथा प्राधिकार–दायित्व संबंधों के परिभाषित करने और स्थापित करने की प्रक्रिया से है। यह व्यक्तियों को उद्यम के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अत्यधिक प्रभावपूर्ण ढंग से मिलकर काम करने के योग्य बनाता है। संगठन प्रक्रिया का परिणाम ''संगठन'' है जिसमें व्यक्तियों का एक दल एक या अधिक सामान्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये आपस में मिलकर काम करता है। इस प्रकार एक संगठन की विशेषताएँ हैं : व्यक्तियों के एक दल की एक सामान्य प्रयास की दिशा में स्वेच्छापूर्वक योगदान करने की इच्छा, काम का विभाजन, सामान्य उद्देश्य, लम्बवत एवं समानान्तर संबंध, आदेश श्रृंखला, और गतिशील कार्यप्रणाली।

संगठन ऐसी रूपरेखा प्रदान करता है जिसके अंतर्गत सहकारितापूर्ण कार्य बिना किसी तनाव के किया जा सकता है और व्यक्ति अपने काम को अत्यधिक प्रभावपूर्ण ढंग से कर सकते हैं। संगठन वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से प्रबंधक गड़बड़ी के स्थानों पर व्यवस्था कायम करते हैं और प्रभावीदल–कार्य (टीम वर्क) के लिए समुचित वातावरण बनाते हैं। यदि संगठन को तंत्र के रूप में देखा जाए तो यह कई परस्पर–आधारित एवं परस्पर–संबंधित अवयवों से, जिन्हें उपतंत्र कहा जाता है, बनता है। एक सामाजिक तंत्र के रूप में, एक संगठन के अवयव हैं: मानवीय एवं भौतिक संसाधनों के साथ–साथ सूचनाओं का आगत, प्रक्रिया, और सामान और सेवाओं का निर्गत।

संगठन बनाने में: (1) उद्देश्यों का निर्धारण, (2) कार्यकलाप का अभिनिर्धारण एवं वर्गीकरण, (3) कामों का आबंटन, (4) संबंधों को विकसित करना सम्मिलित हैं। संगठन का ढाँचा संगठन के विभिन्न अंगों या अवयवों के बीच उच्च प्रबंध द्वारा औपचारिक रूप से स्थापित संबंधों के प्रतिरूप का उल्लेख करता है। कार्यकलाप के विन्यास के आधार पर तीन प्रकार से संगठन ढाँचों में अंतर किया जा सकता है जो निम्नलिखित हैं: 1) कार्यात्मक, 2) खण्डीय, 3) अनुकूली

प्रबंध विशेषज्ञों ने संगठन के जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है वे नियोजन और कुशल संगठन ढाँचे के पथप्रदर्शक हैं। इनमें सम्मिलित हैं: 1) उद्देश्यों की एकता, 2) काम का विभाजन और विशिष्टीकरण, 3) जॉबों की परिभाषा, 4) रेखा और कर्मचारी कार्यों का अलगाव, 5) आदेश की श्रृंखला, 6) सामंजस्य का सिद्धांत, 7) आदेश की एकता, 8) अपवाद का सिद्धांत, 9) पर्यवेक्षण क्षमता की सीमा, 10) संतुलन का सिद्धांत, 11) सम्प्रेषण, 12) लोच, और 13) निरंतरता।

नियंत्रण के विस्तार का अर्थ व्यक्तियों की उस संख्या से है जिसका प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण एक प्रबंधक कर सकता है। आदर्श क्षमता–सीमा कई तत्वों, जैसे काम की प्रकृति, प्रबंधक की क्षमता, कर्मचारी सहायता, अधीनस्थों की क्षमता, आदि, पर निर्भर है।

एक संगठन चार्ट प्रमुख कार्यों, उनके संबंधों और साथ ही विभिन्न पदों तथा उनमें उत्तरदायित्व की औपचारिक रेखाओं का आरेखीय दृश्य प्रस्तुत करता है। यह प्रबंध और कर्मचारियों के लिए एक बहुमूल्य सहायक का कार्य करता है। एक संगठन नियम–पुस्तिका उच्च–प्रबंधकीय निर्णयों, मानक कार्यविधियों एवं प्रणालियों तथा कर्तव्यों एवं दायित्वों के माध्यम से कार्यों (jobs) के विवरण का अभिलेख है। औपचारिक संगठन एक नियोजित ढाँचा है जो व्यक्तिगत दलों, अनुभागों, इकाइयों, विभागों और खंडों में अधिकृत रूप से स्थापित संबंधों के प्रतिरूप को प्रदर्शित करता है। अनौपचारिक संगठन व्यक्तियों की परस्पर सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं पर आधारित संबंधों का उल्लेख करता है।

10.12 शब्दावली

आदेश की श्रृंखला	:	संगठन के शीर्ष से निम्नतम भाग को जाने वाली प्राधिकार रेखा।
विभागीकरण	:	किन्हीं सुपरिभाषित आधारों पर कार्यों का वर्गीकरण।
औपचारिक संगठन	:	व्यक्तियों, दलों, अनुभागों, इकाइयों, विभागों और खंडों में विद्यमान संबंधों के अधिकृत रूप से स्थापित प्रतिरूप को प्रदर्शित करने वाला एक नियोजित ढाँचा।
अनौपचारिक संगठन	:	एक संगठन के भागीदारों के बीच संबंधों का जाल जो सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के आधार पर स्वाभाविक रूप से पनपते हैं।
संगठन चार्ट	:	उद्यम में विभिन्न पदों और उनमें उत्तरदायित्व की औपचारिक रेखाओं का रेखाचित्रीय प्रदर्शन।
संगठन नियम–पुस्तिका	:	जॉब विवरणों और अन्य सूचनाओं का, संगठन चार्ट के अलावा, एक अभिलिखित प्रलेख।
संगठन ढाँचा	:	संगठन में विभिन्न पदों में अधिकार–दायित्व संबंध जो यह दिखाते हैं कि कौन किसको प्रतिवेदन करता है।
नियंत्रण क्षमता का विस्तार	:	अधीनस्थों की वह संख्या जिसका प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण एक प्रबंधक कर सकता है।
ढाँचा	:	अंगों या अवयवों में संबंधों की रूपरेखा।
तंत्र	:	विभिन्न अंगों में आपसी संबंध का विन्यास और समुच्चय जो एक पूर्ण इकाई के रूप में काम करते हैं।
आदेश की एकता	:	प्रत्येक अधीनस्थ का एक वरिष्ठ के अधीन होने का सिद्धांत।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1) i) सही, ii) गलत, iii) गलत, iiv) सही, v) सही

   2) i) परस्पर–संबंधित, ii) काम–दायित्व, iii) वरिष्ठ, अधीनस्थ, iv) निचले, v) बड़े

2. 1) i) सोपानिक, ii) समता, iii) अपवाद के, iv) लोचपूर्ण, v) कम

   2) i) गलत, ii) गलत, iii) सही, iv) सही, v) गलत

3) 1) i) सही, ii) गलत, iii) गलत, iv) सही, v) गलत

2) i) कार्यप्रणाली, व्यवहार, ii) रेखा, विस्तार, iii) चार्ट, iv) सोपानिक, विभागीय, v) कार्यदल

10.14 स्वपरख प्रश्न

1) संगठन बनाने से आप वया समझते हैं ? सुदृढ़ संगठन के महत्वपूर्ण सिद्धांत क्या हैं?

2) संगठन तंत्र के अवयवों को समझाइए ?

3) संगठन प्रक्रिया में सम्मिलित प्रमुख कदमों का विवेचन कीजिए।

4) किन परिस्थितियों में संगठन का एक खंडीय ढाँचा कार्यात्मक ढाँचे से श्रेष्ठ होता है? उनके सापेक्ष गुणों की तुलना कीजिए।

5) नियंत्रण क्षमता के विस्तार से आप क्या समझते हैं ? नियंत्रण क्षमता के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्वों का विवेचन कीजिए।

6) ''संगठन चार्ट" अधिकार के पदों और संगठन ढाँचे में उनके संबंधों का विस्तृत दृश्य प्रस्तुत करता है"। इस कथन को समझाइए और संगठन चार्ट की सीमाओं को बतलाइए।

7) संगठन नियम पुस्तिका का क्या अर्थ है ? इसके क्या प्रयोग हैं ? इसमें क्या सूचनाएँ होनी चाहिए।

8) ''प्रत्येक निर्देश में औपचारिक संबंध के आवरण के पीछे सामाजिक संबंधों का एक और अधिक जटिल तंत्र, जो अनौपचारिक संगठन कहलाता है, विद्यमान होता है''। इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिए और अनौपचारिक संगठन की प्रकृति को समझाइए।

9) औपचारिक और अनौपचारिक संगठन में अंतर कीजिए ? अनौपचारिक संगठन के प्रति प्रबंध का क्या रुख होना चाहिए?

10) निम्नलिखित पर नोट लिखिए।

   i) संगठन ढाँचा,

   ii) प्रोजेक्ट संगठन

टिप्पणी : ये प्रश्न इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए, किंतु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को नहीं भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 11 विभागीकरण तथा अधिकार संबंध के रूप

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 विभागीकरण की परिभाषा

11.3 विभागीकरण की आवश्यकता

11.4 विभागीकरण के आधार

  11.4.1 कार्य

  11.4.2 उत्पाद

  11.4.3 क्षेत्र

  11.4.4 ग्राहक

  11.4.5 प्रक्रिया या उपकरण

11.5 विभागीकरण के आधार का चुनाव

11.6 विभागीकरण के लाभ

11.7 अधिकार संबंध

  11.7.1 रेखा संगठन

  11.7.2 रेखा और कर्मचारी संगठन

  11.7.3 रेखा संगठन बनाम रेखा और कर्मचारी संगठन

  11.7.4 कार्यात्मक संगठन

  11.7.5 रेखा संगठन बनाम कार्यात्मक संगठन

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.11 स्वपरख प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- विभागीकरण की अवधारणा और प्रकृति का वर्णन कर सकेंगे,
- विभागीकरण के विभिन्न आधारों का वर्णन एवं मूल्यांकन कर सकेंगे,
- विभागीकरण के महत्व एवं सीमाओं का मूल्यांकन कर सकेंगे,
- एक संगठन में अधिकार संबंधों के प्रमुख स्वरूपों की रूपरेखा एवं उनका संक्षिप्त विवेचन कर सकेंगे,
- किसी संगठन में विभिन्न रेखा एवं कर्मचारी पदों के बीच संबंधों में सामंजस्य स्थापित करने के उपायों का सुझाव दे सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

सजातीय कार्यकलाप को कार्यों के विशेष एवं निरंतर प्रकृति के आधार पर एक संगठनात्मक इकाई में वर्गीकृत करना विभागीकरण (departmentation) कहलाता है। प्रशासन के उद्देश्य से संगठनात्मक कार्यकलाप का विभागों में उपयुक्त विभाजन प्रबंध का एक आधारभूत प्रयत्न रहा है। इकाई 10 में आपने संगठन की प्रकृति, इसके तत्व, संरचनात्मक स्वरूप, संगठन चार्ट और नियमावली की उपयोगिता, नियंत्रण की सीमा, और संगठनात्मक संबंधों के औपचारिक एवं अनौपचारिक पहलुओं के बारे में ज्ञान प्राप्त किया है। इस इकाई में विभागीकरण के विभिन्न आधारों, विभागीकरण के महत्व एवं सीमाओं की चर्चा की गयी है। साथ ही, संगठन में अधिकार संबंधों के प्रमुख स्वरूपों का विवेचन किया गया है।

11.2 विभागीकरण की परिभाषा

विभागीकरण को किसी संगठन के विभिन्न कार्यकलाप को कुशल परिचालन के उद्देश्य से कई अलग इकाइयों में वर्गीकृत करने अथवा विभाग बनाने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह शब्द विभिन्न संगठनों में अलग–अलग ढंग से प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ, व्यावसायिक इकाइयों में वर्ग, विभाग और खंड शब्दों का प्रयोग किया जाता है, सरकारी विभागों में इसे शाखा, विभाग अथवा खंड कहा जाता है, और सेना में रेजीमेंट, बटालियन, वर्ग और कम्पनी शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

विभागीकरण का प्रभाव एवं परिणाम प्रबंधकीय जिम्मेदारियों का सीमांकन एवं क्रियात्मक कार्यों का वर्गीकरण है। उच्चतम प्रबंध स्तर के नीचे के सभी स्तरों का विभागीकरण हो जाता है एवं क्रमशः प्रत्येक निचले स्तर का पुनः विभागीकरण कर दिया जाता है।

11.3 विभागीकरण की आवश्यकता

विभागीकरण की आवश्यकता इसलिए होती है क्योंकि प्रबंधक, संगठन में काम करने वाले, व्यक्तियों के समन्वित प्रयत्नों के माध्यम से संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उत्सुक होते हैं। इसकी आवश्यकता विशेषतः निम्नलिखित कारणों से होती हैः

i) संगठन विभागीकरण के माध्यम से विशिष्टीकरण का लाभ उठा सकता है।

ii) विभागीकरण के फलस्वरूप प्रत्येक सदस्य यह जान सकता है कि संगठन के सम्पूर्ण कार्य में उसकी भूमिका क्या है।

iii) विभागीकरण द्वारा सम्प्रेषण, समन्वय और नियंत्रण आसान हो जाता है और यह संगठन की सफलता में योगदान करता है।

iv) विभागीकरण एक आधार प्रस्तुत करता है जिसके चारो ओर संगठन के सदस्यों की निष्ठा एवं भक्ति का निर्माण किया जा सकता है।

v) यह प्रबंधक को इस योग्य बनाता है कि कुछ प्रमुख प्रबंधकीय निर्णय लेने के लिए वह आवश्यक सूचनाओं प्रवीणताओं और सामर्थ्य के स्त्रोतों का पता लगा सके।

11.4 विभागीकरण के आधार

व्यावसायिक संस्था के विभागीकरण के लिए निम्नलिखित आधारों का प्रयोग किया जाता है।

11.4.1 कार्य (Function)

कार्यकलाप के वर्गीकरण का सर्वाधिक प्रचलित स्वरूप जो लगभग प्रत्येक संस्था में पाया जाता है, क्रियात्मक वर्गीकरण है। यहाँ पर ''कार्य'' शब्द का प्रयोग एक संस्था के प्रमुख कार्यकलाप की ओर संकेत करने के लिए किया गया है। इसे संस्था के कार्यकलाप के निष्पादन से सम्बंधित किसी भी ऐसे कार्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसे स्पष्ट रूप से अन्य कार्यों से पृथक किया जा सकता है। एक विनिर्माणी संगठन के प्रमुख कार्य हैं : उत्पादन, विक्रय, वित्त और कर्मचारी। संगठन के निचले स्तरों पर भी क्रियात्मक विभागीकरण किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, विपणन विभाग में किये जाने वाले कार्यकलाप का विभाजन, विपणन अनुसंधान, विक्रय और विज्ञापन आदि वर्गों में किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, अनुक्रम के क्रमिक स्तरों द्वारा क्रियात्मक पृथक्कीकरण की प्रक्रिया हो सकती है। यह प्रक्रिया उस समय तक निरंतर चलती रहती है जब तक और पृथक्कीकरण के लिए सुदृढ़ आधार उपलब्ध है। निम्नलिखित चित्र में इसे उत्पादन, विपणन एवं वित्त कार्यों में वर्गीकृत किया गया है।

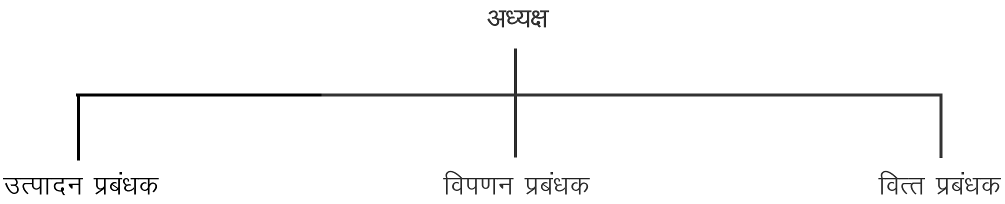

चित्र 11.1: कार्य के आधार पर विभागीकरण

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

क्रियात्मक वर्गीकरण के लाभ :

i) यह विभागीकरण का सर्वाधिक तार्किक एवं प्राकृतिक स्वरूप है।

ii) यह विशिष्टीकरण लाता है जिससे मानवीय एवं अन्य संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग सम्भव होता है।

iii) यह प्रत्येक क्रिया पर महत्व देता है। प्रत्येक विभाग संगठन के उद्देश्यों में अपना योगदान करता है।

iv) यह अधिकारों के अन्तरण को आसान बनाता है और इस प्रकार प्रमुख कार्यकारी के कार्य–बोझ को कम करता है।

v) जिन कार्यों के लिए विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है उन्हें पूरा करने के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति की जा सकती है।

क्रियात्मक विभागीकरण की हानियाँ :

i) इसमें विशिष्टीकरण पर अधिक महत्व दिया जाता है जिससे अनेकों व्यक्तियों का दृष्टिकोण सीमित हो जाता है। यह संगठन को भी हतोत्साहित कर सकता है। वे सोच सकते हैं कि वे सम्पूर्ण संगठन का नगण्य भाग हैं।

ii) विभिन्न विभागों में संघर्ष हो सकता है। उदाहरण के लिए, विक्रय विभाग द्वारा दी गई सुपुर्दगी तिथियों पर उत्पादन विभाग सामान उपलब्ध कराने में असमर्थता दिखा सकता है।

iii) विभिन्न विभागों के कार्यकलाप के समन्वय और नियंत्रण में कठिनाइयाँ आ सकती हैं।

iv) क्रियात्मक विशिष्टीकरण अधिक कार्यकुशलता द्वारा लागतों को घटा सकता है परन्तु इस प्रकार की बचत विभागीकरण के परिणामस्वरूप बढ़े हुए खर्चों की क्षतिपूर्ति करने के लिए काफी नहीं हो सकती। प्रबंधक अपना विभागीय साम्राज्य बनाने का प्रयत्न कर सकते हैं।

11.4.2 उत्पाद (Product)

उत्पाद विभागीकरण में विभाग उत्पादों के आधार पर बनाये जाते हैं। प्रत्येक विभाग को खंड (या डिवीजन) कहा जाता है। उत्पाद विभागीकरण तब लाभप्रद होता है जब उत्पाद के विस्तार, विविधीकरण, इंजीनियरिंग, विनिर्माणी एवं विपणन संबंधी विशेषताएँ प्रमुख महत्व की हों। उत्पाद विविधीकरण के अंतर्गत एक उत्पाद रेखा से संबंधित सभी कार्यकलाप एक वर्ग में सम्मिलित कर लिये जाते हैं और इन्हें एक अर्द्ध–स्वायत्त प्रबंधक के आधीन रखा जाता है। खण्डीय प्रबंधक को इस बात का अधिकार है कि वह उत्पाद को बाजार में माँग की प्रकृति के अनुसार विकसित करें। इसका प्रयोग उस समय किया जाता है जब उत्पाद सापेक्षतः जटिल है और प्लांट तथा उपकरण में ऊँची मात्रा में पूँजी का विनियोग आवश्यक है, जैसे मोटरकार और एलेक्ट्रॉनिक उद्योग। उदाहरण के लिए, एक बड़ी कम्पनी में धातु खंड, रसायन खंड एवं प्लास्टिक खंड हो सकते हैं, जैसा कि निम्नलिखित चित्र 11.2 में दिखाया गया है :

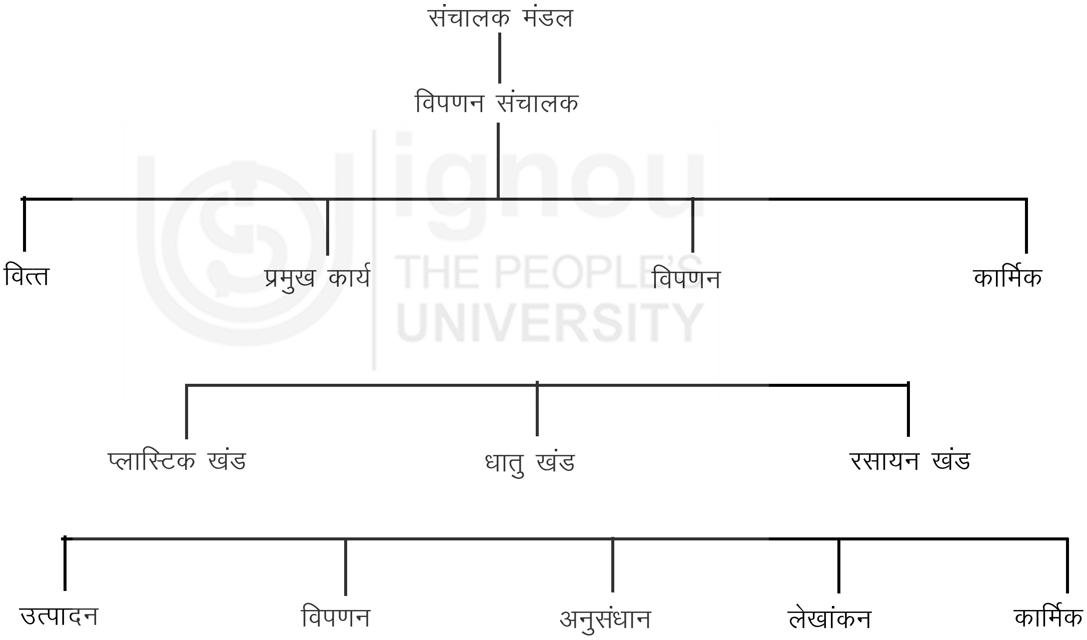

चित्र 11.2: उत्पाद के आधार पर विभागीकरण

उत्पाद विभागीकरण के लाभ

i) उत्पाद विभागीकरण उन समन्वय संबंधी समस्याओं को कम करता है जो क्रियात्मक विभागीकरण के अंतर्गत उत्पन्न होती हैं। उत्पाद के एक विशेष रेखा से संबंधित कार्यकलाप का एकीकरण इसके अंतर्गत होता है। इससे उत्पाद विस्तार एवं विविधीकरण आसान बनता है।

ii) यह प्रत्येक उत्पाद रेखा पर ध्यान देता है।

iii) यह उत्पादों के आधार पर भौतिक सुविधाओं के विशिष्टीकरण को जन्म देता है जिससे मितव्ययता होती है।

iv) विभिन्न उत्पाद खंडों के निष्पादन का मूल्यांकन एवं तुलना करना आसान होता है।

v) यह उत्पादन–समस्याओं को अन्य समस्याओं से अलग रखता है।

उत्पाद विभागीकरण की हानियाँ

i) इसमें भौतिक सुविधाओं एवं अनेक कार्यों का दोहरापन होता है। प्रत्येक उत्पाद खंड अपने लिए सुविधाओं और क्रियात्मक कर्मचारियों की अलग व्यवस्था करता है।

ii) कुछ कार्यों जैसे लेखांकन, वित्त, विपणन, आदि के केन्द्रीयकरण का लाभ नहीं उठाया जा सकता है।

iii) यदि किसी उत्पाद की माँग पर्याप्त नहीं है तो प्लांट क्षमता से कम काम करेगा।

iv) माँग, तकनीक आदि में परिवर्तन के अनुरूप अपने को ढालना कम्पनी के लिए कठिन हो सकता है।

11.4.3 क्षेत्र (Territory)

क्षेत्र के अनुसार विभागीकरण उस समय होता है जब एक कम्पनी विभिन्न क्षेत्रों में स्थित कई खंडों में संगठित की जाती है। इसे भौगोलिक विभागीकरण के नाम से भी जाना जाता है। क्षेत्रीय विभागीकरण बैकों, बीमा कम्पनियों, यातायात कम्पनियों आदि के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। वे अपने कार्यकलाप की मंडलों, खंडों और शाखाओं में विभाजित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय जीवन बीमा निगम ने अपने कार्यकलाप के संगठन के लिए क्षेत्रीय विभागीकरण का अनुसरण किया है।

जीवन बीमा निगम का संगठन चार्ट नीचे चित्र 11.3 में दिया जा रहा है :

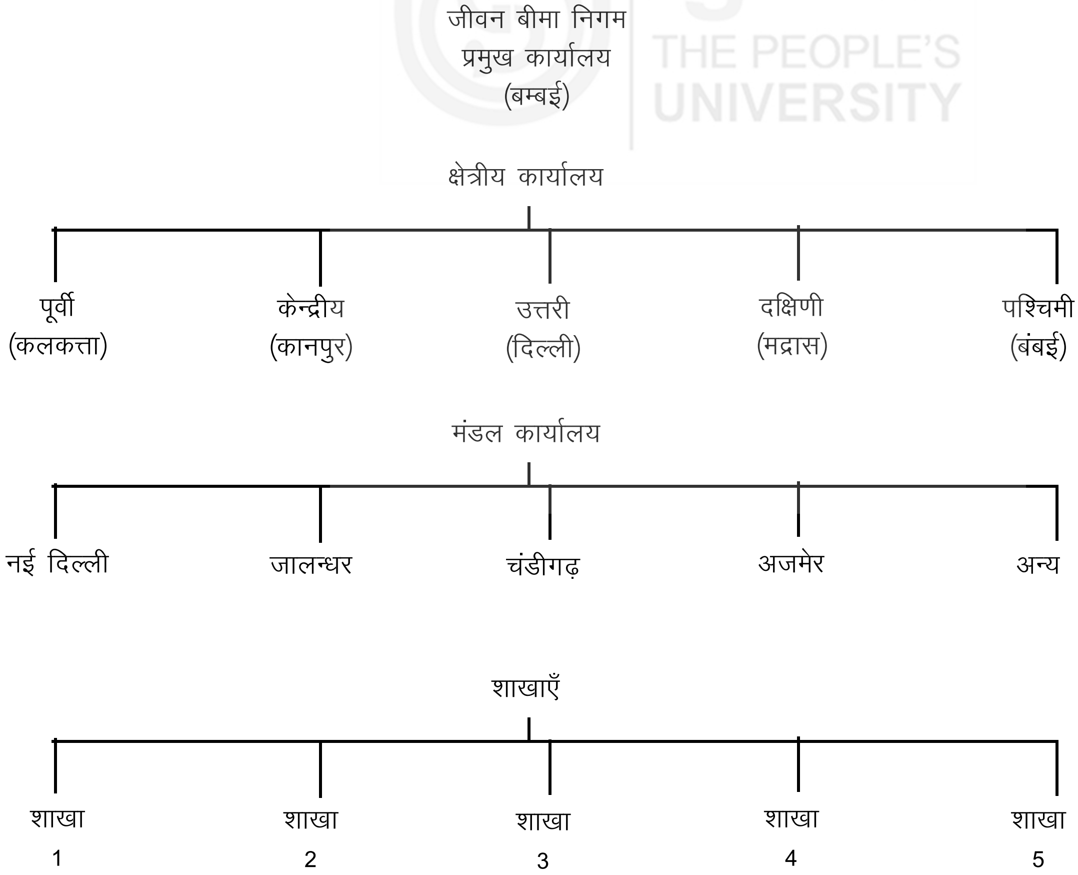
जीवन बीमा निगम
प्रमुख कार्यालय
(बम्बई)
क्षेत्रीय कार्यालय
पूर्वी (कलकत्ता)
केन्द्रीय (कानपुर)
उत्तरी (दिल्ली)
दक्षिणी (मद्रास)
पश्चिमी (बंबई)
मंडल कार्यालय
नई दिल्ली
जालन्धर
चंडीगढ़
अजमेर
अन्य
शाखाएँ
शाखा 1
शाखा 2
शाखा 3
शाखा 4
शाखा 5

चित्र 11.3: क्षेत्र के आधार पर विभागीकरण

क्षेत्रीय विभागीकरण के लाभ

i) यह स्थानीय कार्यों के लाभ प्राप्त करने में सहायता पहुँचाता है। स्थानीय प्रबंधक अपनी और अपने ग्राहकों की आवश्यकताओं से भलीभांति परिचित होते हैं। वे अपने को गति एवं परिशुद्धता से स्थानीय स्थितियों के अनुरूप ढाल सकते हैं।

ii) एक विपणन खंड स्थानीय माँगों की पूर्ति अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से कर सकता है।

iii) एक क्षेत्रीय (regional) खंड की स्थापना करने से स्थानीय कार्यकलाप का समन्वय अधिक अच्छा होता है।

iv) यह विभिन्न क्षेत्रों में व्यवसाय के विस्तार को आसान बनाता है।

v) देश के आर्थिक विकास की दृष्टि से यह लाभकारी है।

क्षेत्रीय विभागीकरण की हानियाँ

i) इसमें भौतिक सुविधाओं का दोहरापन होता है। इससे कार्यकलाप अमितव्ययी (uneconomical) हो जाते हैं।

ii) विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयों में एकीकरण की समस्या हो सकती है।

iii) क्षेत्रीय विभागों की जिम्मेदारी लेने के लिए योग्य कर्मचारियों का अभाव हो सकता है।

iv) विभिन्न क्षेत्रों में स्थित विभिन्न विभागों को केन्द्रित सेवाएँ प्रदान कराने में कठिनाइयाँ आ सकती है।

11.4.4 ग्राहक (Customer)

विभागीकरण के इस आधार के अंतर्गत विशेष प्रकार के ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अलग विभागों की रचना की जाती है। इस प्रकार का संगठन ग्राहकों की आवश्यकताओं को अधिक सुविधापूर्वक एवं सफलतापूर्वक संतुष्ट करने में प्रबंधकों की सहायता करता है। विपणन संगठन अपने कार्यकलापों को ग्राहकों के वर्ग के अपने द्वारा सेवित ग्राहकों के वर्गों को माँग की मात्रा, भाषा और रुचि के अनुसार वर्गीकृत कर सकता है। उदाहरण के लिए, एक विभागीय भंडार, शिशु विभाग, महिला विभाग और पुरुष विभाग में बाँटा जा सकता है जहाँ प्रत्येक विभाग विभिन्न ग्राहक–वर्गों की अनेकों आवश्यकताओं को पूरा करेगा। एक दूसरा संगठन अपने विपणन क्रियाओं को थोक, फुटकर एवं निर्यात विभागों में संगठित कर सकता है जैसा कि नीचे चित्र 11.4 में दिखाया गया है।

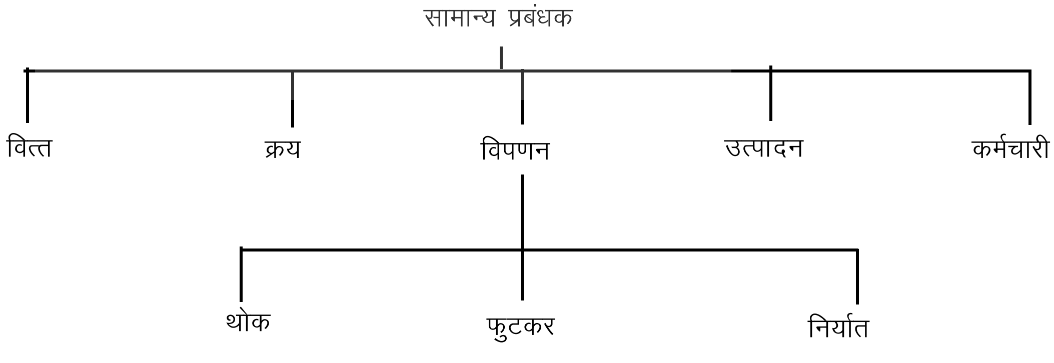

चित्र 11.4: ग्राहक के आधार पर विभागीकरण

ग्राहक–विभागीकरण के लाभ

i) संगठन विभिन्न ग्राहकों की आवश्यकताओं के बारे में विचार कर सकता है।

ii) इस प्रकार का संगठन स्पष्टतः जाने–पहचाने एवं सम्भावित ग्राहकों पर ध्यान दे सकता है।

iii) आकर्षक एवं साधन–सम्पन्न ग्राहकों से संबंध बनाना अधिक आसान है।

iv) ग्राहक–प्रधान संगठन के लिए यह अत्यधिक उपयोगी है।

ग्राहक–विभागीकरण की हानियाँ

i) सभी ग्राहकों और उनकी रुचियों, आदतों एवं रीति–रिवाजों पर विचार करना लगभग असम्भव है।

ii) ग्राहकों के आधार पर किया गया विभागीकरण विक्रय कर्मचारी एवं उत्पादन करने वालों के बीच समन्वय की समस्या खड़ी कर देता है।

iii) संगठन अमीर एवं गरीब ग्राहकों में भेदभाव कर सकता है।

11.4.5 प्रक्रिया या उपकरण (Process or Equipment)

इस विभागीकरण के अंतर्गत क्रियाकलाप को विभिन्न विनिर्माणी प्रक्रियाओं के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। इस प्रक्रिया में समान प्रकार के श्रम और उपकरण एक साथ कर दिये जाते हैं। एक निर्माणी संस्था अपने कार्यकलाप का विभागीकरण सम्बद्ध उत्पादन प्रक्रिया अथवा उपकरण के आधार पर कर सकती है। उदाहरणार्थ, एक कपड़ा मिल अपने विभागों को सूत–कताई, बुनाई, चिकनाई (calendering) एवं रंगाई में संगठित कर सकता है, जैसा कि नीचे चित्र में दर्शाया गया है। इसी प्रकार एक छापाखाने में कम्पोजिंग, प्रूफ पढ़ना, छपाई एवं जिल्दसाज विभाग हो सकते हैं। इस प्रकार का विभागीकरण इंजीनियरिंग एवं तेल उद्योगों में भी अपनाया जा सकता है। उपकरण के आधार पर अलग विभाग का औचित्य यह है कि हमेशा यह सम्भव नहीं कि प्रत्येक विभाग में एक कीमती उपकरण लगाया जाये जिसका वह प्रयोग करेगा। साथ ही, इस उपकरण का प्रयोग करने के लिए निपुण कर्मचारियों की आवश्यकता होती है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

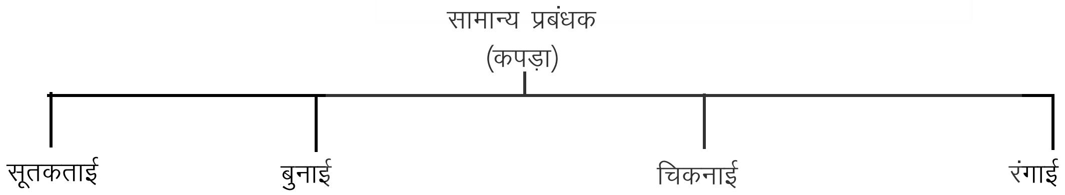

चित्र 11.5: प्रक्रिया के आधार पर विभागीकरण

प्रक्रिया विभागीकरण के लाभ

i) यह विभागीकरण उस समय बहुत सहायक है जब मशीन अथवा उपकरण चलाने के लिए विशेष निपुणता की आवश्यकता होती है।

ii) यह संस्था को विशिष्टीकरण, तथा उपकरणों एवं साधनों के अनुकूलतम रखरखाव के लाभ प्राप्त करने के योग्य बनाता है।

iii) यह विनिर्माणी कम्पनियों के लिए अधिक उपयुक्त है।

विभागीकरण की हानियाँ

i) प्रक्रिया द्वारा विभागीकरण विभिन्न कार्यकलाप एवं उत्पादों के समन्वय को कठिन बनाता है।

ii) इससे विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रबंधकों में संघर्ष होता है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत।

   i) संगठन में अनुक्रम के सभी स्तरों पर विभागीकरण नहीं होता है।

   ii) संगठनात्मक अनुक्रम में क्रियात्मक आधार पर विभागीकरण की प्रक्रिया केवल उच्च एवं मध्य स्तरों तक ही सीमित है।

   iii) उत्पाद एवं भौगोलिक, दोनों के ही विभागीकरण में सुविधाओं और क्रियाओं का दोहरापन है।

   iv) यदि व्यावसायिक संस्था केवल एक उत्पाद में लगी हुई है तो विभागीकरण का आधार ग्राहक नहीं हो सकते।

   v) प्रक्रिया विभागीकरण सभी प्रकार के उद्यमों में न तो लाभदायक है और न ही सम्भव।

2) कोष्ठकों में दिये गये शब्दों में से सर्वोपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   i) विभागीकरण प्रधान कार्यकारी को निर्णय लेने में .... स्रोत पता करने योग्य बनाता है। (कच्चा माल/सूचना निर्मित उत्पाद)

   ii) क्रियात्मक विभागीकरण .... को कम कर सकता है।

   (कार्यकुशलता/लागत/प्रबंधकों के अधिकार)

   iii) विभिन्न क्षेत्रों में व्यवसाय का विस्तार .... विभागीकरण द्वारा सुविधाजनक बनाया जाता है। (उत्पाद/प्रक्रिया/क्षेत्र)

   iv) कपड़ा मिल विभागों को सामान्यतः .... के आधार पर संगठित करते हैं।
   (ग्राहक/क्षेत्र/प्रक्रिया)

   v) उत्पाद विभागीकरण .... समस्याओं को कम करता है जो क्रियात्मक संगठन के अंतर्गत जन्म लेते हैं। (निर्णय लेना/नियंत्रण/ समन्वय)

11.5 विभागीकरण के आधार का चुनाव

विभागीकरण के एक उपयुक्त आधार का चुनाव करते समय निम्नलिखित तत्वों को ध्यान में रखना चाहिएः

1) **विशिष्टीकरण** : विशिष्टीकरण से व्यवसाय में आंतरिक बचते होती हैं। इसलिए विभागीकरण का आधार विशेष चुनते समय यह एक महत्वपूर्ण तत्व है। प्रबंध को विभिन्न कार्यकलाप को इकाइयों में इस प्रकार वर्गीकृत करना चाहिए ताकि इससे काम का विशिष्टीकरण हो सके। अतिविशिष्टीकरण से बचना चाहिए क्योंकि इससे कर्मचारियों में अभिप्रेरणा की कमी हो सकती है।

2) **मितव्ययताः** मितव्ययता बनाए जाने वाले विभागों की संख्या निश्चित करने में इस घटक का अत्यधिक महत्व है। नये विभाग की रचना से विभिन्न प्रकार की लागतें बढ़ जाती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि नये विभाग में अतिरिक्त कर्मचारी, स्थान एवं उपकरण की आवश्यकता होती है। इसलिए प्रबंध को यह देखना चाहिए कि जो

विभाग बनाये गये हैं वे इन साधनों का सर्वोत्तम उपयोग करें और विभागों की रचना से अधिकतम मितव्ययता प्राप्त की जा सके।

3) **प्रमुख कार्य–क्षेत्रों का मूल्यांकन** : व्यवसाय के उन सभी प्रमुख कार्य–क्षेत्रों पर उचित महत्व दिया जाना चाहिए जिन पर व्यवसाय की सफलता निर्भर करती है। यही कारण है कि व्यवहार में संगठन संरचना के कार्य को सबसे ऊपर रखा जाता है। उत्पादन, वित्त, विपणन आदि जैसे प्रमुख कार्यों के लिए अलग विभाग बनाये जाते हैं। कभी–कभी स्थानीय स्थितियाँ बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। इसलिए प्रबंध को विभागीकरण का आधार निश्चित करते समय स्थानीय स्थितियों पर अपेक्षित ध्यान देना चाहिए।

4) **न्यूनतम संघर्ष** : आपसी संघर्ष से बचने के उद्देश्य से विभागीय अधिकारों को स्पष्ट कर देना चाहिए। विभिन्न विभागीय प्रबंधकों के अधिकार स्पष्टतः परिभाषित कर देने चाहिए।

5) **समन्वय (Coordination) :** विभागीकरण का मूल उद्देश्य संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति है। संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न विभागों के कार्यों में समन्वय आवश्यक है। इसलिए विभागीकरण द्वारा संगठन में समन्वय आसान एवं सुविधाजनक होना चाहिए।

6) **नियंत्रण** : नियंत्रण प्रबंध का एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसके द्वारा वह विभिन्न विभागों एवं कर्मचारियों के कार्यों का निदेशन एवं जाँच करता है। विभागीकरण का चुना गया आधार प्रभावशाली नियंत्रण बनाये रखें ताकि संगठन के उद्देश्यों को अधिक मितव्ययता और कुशलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके। उच्च प्रबंधकों को निष्पादन सुनिश्चित करने या कर्मचारियों को परिणामों के लिए जिम्मेदार ठहराने में विभागीकरण से सहायता मिलनी चाहिए।

7) **मानवीय तत्व (Human consideration) :** विभागीकरण में संगठन के केवल तकनीकी पहलू पर ही विचार नहीं किया जाना चाहिए बल्कि मानवीय घटकों पर भी ध्यान देना चाहिए। कर्मचारियों का वर्गीकरण करते समय अनौपचारिक वर्गों, सांस्कृतिक प्रारूप, मूल्य प्रणाली आदि पर उचित बल दिया जाना चाहिए।

संक्षेप में विभागीकरण का आधार चाहे जो भी हो, इसे संगठन के उद्देश्य को मितव्ययता और कुशलता पूर्वक प्राप्त करने को बढ़ावा देने की ओर निर्देशित होना चाहिए। स्वाभाविक है कि इस प्रकार के निर्णय लेने से सम्बद्ध प्रबंधक विभागीकरण के विभिन्न प्रकार की सापेक्ष लाभ हानियों पर विचार करेंगे। व्यावहारिक रूप में कई स्थितियों में सम्पूर्ण संगठन में कार्यकलाप के वर्गीकरण के लिए एक ही आधार का अनुसरण सम्भव नहीं होता है। अधिकांश बड़े संगठन कई आधारों के मिश्रण से विभागीकरण की रूपरेखा बनाते हैं। इस प्रकार, कोई ऐसा आदर्श प्रारूप नहीं है जिसे सभी अवसरों एवं स्थितियों में उपयुक्त कहा जा सके। इसलिए विभागीकरण के प्रारूप का चुनाव करते समय प्रबंध को अत्यधिक सावधानी दिखाने और बहुत अधिक कल्पनाशक्ति के प्रयोग की आवश्यकता होती है। एक बार प्रारूप का चुनाव कर लेने के बाद किसी दूसरे प्रारूप को अपनाना बहुत ही कठिन एवं खर्चीला होता है।

भारतवर्ष में साधारणतया संगठन के उच्चस्तर पर प्रयुक्त विभागीकरण का आधार क्रियात्मक विभागीकरण है। मध्य एवं निम्न स्तर पर जब भी आगे और क्रियात्मक वर्गीकरण सम्भव नहीं होता, अन्य आधारों का प्रयोग किया जाता है।

11.6 विभागीकरण के लाभ

विभागीकरण से निम्नलिखित लाभ प्राप्त करने में सहायता मिलती है :

1) **विशिष्टीकरण** : विभागीकरण से विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं क्योंकि इसमें संगठन के विभिन्न कार्यकलाप को विशिष्ट कार्यों या उद्देश्यों से उनके संबंधों के अनुसार वर्गीकृत कर दिया जाता है। प्रत्येक विभागीय प्रबंधक उसी कार्य में विशिष्टीकरण करता है जो उसे सौंपा गया है।

2) **प्रशासनिक नियंत्रण** : विभागीकरण प्रभावपूर्ण प्रबंधकीय नियंत्रण में सहायता पहुँचाता है क्योंकि प्रत्येक विभाग के लिए निष्पादन के मानक स्पष्टतः सुनिश्चित किये जा सकते हैं। प्रत्येक विभाग का एक विशिष्ट उद्देश्य होता है। इससे व्ययों को सीमित करने में सुविधा होती है।

3) **दायित्व का निर्धारण** : चूंकि संगठन का कार्य प्रबन्धनीय इकाइयों में बाँट दिया जाता है और अधिकार एवं दायित्व ठीक ढंग से परिभाषित कर दिये जाते हैं इसलिए विभिन्न कार्यों के निष्पादन के लिए अलग–अलग प्रबंधकों का दायित्व निश्चित करना आसान होता है।

4) **स्वतंत्रता या स्वायत्तता** : विभागीकरण के माध्यम से बने विभाग अर्द्धस्वायत्त इकाई होते हैं। उनके अध्यक्षों को अपना विभाग चलाने के लिए पर्याप्त स्तर के अधिकार दिये जाते हैं। इससे विभागों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

5) **प्रबंधकों का विकास** : विभागीकरण प्रबंधकों को स्वतंत्र निर्णय लेने एवं पहल करने का अवसर प्रदान कराकर प्रबंधकीय कर्मचारियों के विकास में सहायता करता है। कार्याधिकारी स्वयं को उच्चस्तरीय पदों के लिए तैयार कर सकते हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

11.7 अधिकार संबंध (Authority Relationships)

किसी भी संगठन के लिए एक समुचित ढाँचे की रचना आवश्यक है। संगठन ढाँचे का अभिप्राय उद्यम में विभिन्न पदों के स्तर–क्रम के विन्यास से है। यह औपचारिक रूप से अधिकार और दायित्व सौंपने में सहायता पहुँचाता है। यह उद्यम में सम्प्रेषण एवं समन्वय का प्रारूप भी स्थापित करता है। इस प्रकार सुस्पष्ट अधिकार–दायित्व संबंधों की आवश्यकता ने प्रशासनिक संगठन के निम्नलिखित तीन स्वरूपों को जन्म दिया हैः

1) रेखा संगठन/अधिकार

2) रेखा एवं कर्मचारी संगठन/अधिकार एवं

3) क्रियात्मक संगठन/अधिकार

11.7.1 रेखा संगठन (Line Organisation)

यह एक प्रत्यक्ष लम्बवत संबंध दर्शाता है जिसके माध्यम से कार्य प्रवाहित होता है। इसे सोपानिक अथवा सेना संगठन भी कहते हैं। इसमें समस्त संगठन में अधिकार रेखा ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होती है। उच्च–स्तर पर अधिकार की मात्रा सबसे अधिक होती है और पद–स्तर में नीचे की ओर क्रमशः कम होती जाती है। संगठन का प्रत्येक व्यक्ति आदेश की प्रत्यक्ष श्रृंखला में होता है, जैसा कि नीचे चित्र 11.6 में दिखाया गया है। अधिकार रेखा अधिकार सोपानों की एक निर्विघ्न श्रेणी के रूप में होती है और अनुक्रम विन्यास को प्रदर्शित करती है। अधिकार रेखा न केवल कार्यकारी कर्मचारियों के लिए

आदेश–मार्ग का कार्य करती है बल्कि संस्था में सम्प्रेषण, समन्वय एवं जिम्मेदारी का माध्यम भी प्रदान करती है।

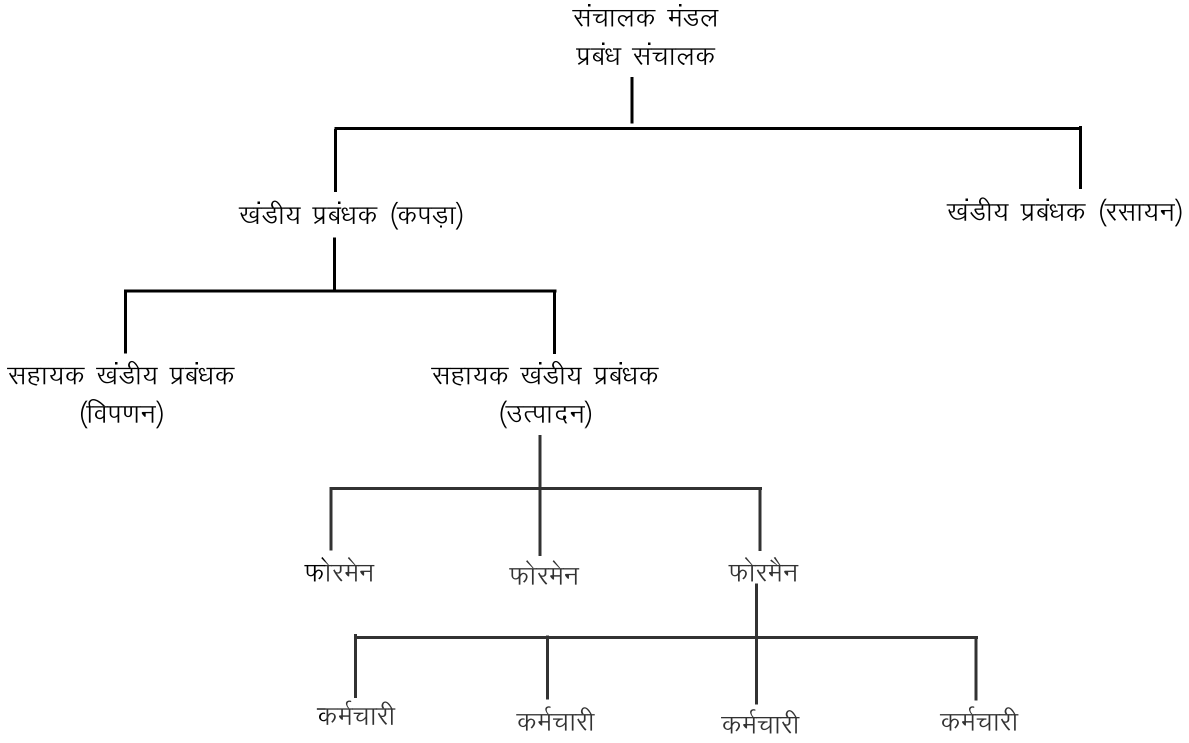
संचालक मंडल
प्रबंध संचालक
खंडीय प्रबंधक (कपड़ा)
खंडीय प्रबंधक (रसायन)
सहायक खंडीय प्रबंधक (विपणन)
सहायक खंडीय प्रबंधक (उत्पादन)
फोरमेन
फोरमेन
फोरमैन
कर्मचारी
कर्मचारी
कर्मचारी
कर्मचारी

चित्र 11.6: संगठनात्मक चार्ट द्वारा रेखा संगठन का प्रदर्शन

रेखा संगठन के गुण

1) इसे स्थापित करना आसान है और कर्मचारी इसे आसानी से समझ सकते हैं।

2) इसमें अधिकार और दायित्व संबंधों की तादात्म्य सुस्पष्ट है।

3) यह उद्यम में अच्छा अनुशासन सुनिश्चित करता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि वह किसके प्रति जिम्मेदार है।

4) इससे शीघ्र निर्णय लेने में सुविधा होती है क्योंकि प्रत्येक स्तर पर अधिकार निश्चित होता है। एक कार्यकारी न तो अपना निर्णय लेने का कार्य दूसरों को सौंप सकता है और न ही इससे सम्बद्ध दोष।

5) यह आदेश की एकता को सुविधाजनक बनाता है और इस प्रकार संगठन के सोपानिक सिद्धांत के अनुरूप है।

रेखा संगठन के दोष

1) इसमें उच्च स्तर पर अधिकार का केन्द्रीयकरण होता है। यदि उच्च–स्तरीय कार्यकारी योग्य व्यक्ति नहीं है तो उद्यम सफल नहीं होगा।

2) रेखा संगठन विकास के साथ उच्च कार्यकारी पर काम का अधिक बोझ डाल देता है।

3) उच्च स्तरों पर अधिकार के केन्द्रीयकरण के कारण नीचे से ऊपर को सम्प्रेषण यथार्थतः नहीं के बराबर होता है। यदि वरिष्ठ अधिकारी गलत निर्णय लेते हैं तो भी इसे पूरा किया जाएगा और कोई भी अधीनस्थ इस निर्णय की कमियाँ बताने का साहस नहीं कर सकता है।

4) रेखा संगठन एक बड़े संगठन के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसमें विशिष्टीकरण का अभाव है। बहुत सारे कार्यों की अपनी अलग समस्याएँ होती हैं जिनके समाधान की

निपुणता एवं योग्यता वरिष्ठ अधिकारी में नहीं हो सकती है और जिसके लिए विशेषज्ञों की सेवाओं की आवश्यकता होती है। इन दोषों के होते हुए भी रेखा संगठन बहुत लोकप्रिय है, विशेषकर छोटे संगठनों में जहाँ अधिकार–स्तर कम हैं और थोड़े से व्यक्ति काम करते हैं। इस संगठन का एक सुधरा हुआ रूप, रेखा और कर्मचारी संगठन है जिसमें संगठन के महत्वपूर्ण विषयों पर रेखा अधिकारियों को विशिष्ट सहायता प्रदान करने के लिए उनके साथ विशेषज्ञों को रखा जाता है।

11.7.2 रेखा एवं कर्मचारी संगठन (Line and Staff Organisation)

रेखा एवं कर्मचारी संगठन में रेखा अधिकार नीचे की ओर वैसे ही जाता है जैसे रेखा संगठन में, परंतु इसके साथ–साथ महत्वपूर्ण विषयों पर सलाह देने के लिए रेखा प्रबंधकों के साथ विशेषज्ञ (जिन्हें कर्मचारी कहते हैं) लगा दिये जाते हैं। वे विशेषज्ञ रेखा प्रबंधकों को उनकी आवश्यकतानुसार सलाह एवं सहायता देने के लिए सर्वत्र तैयार रहते हैं जिसके कारण रेखा अधिकारी अपने कार्य और अच्छी तरह से पूरा कर सकते हैं। कर्मचारी अधिकारियों को संगठन में आदेश देने का कोई अधिकार नहीं होता है क्योंकि उनकी नियुक्ति रेखा अधिकारियों को केवल सलाह देने के लिए की जाती है। ''कर्मचारी" का तात्पर्य है रेखा प्रबंधकों की सहायता के लिए किया जाने वाला कार्य। अधिकांश संगठनों में कर्मचारी का प्रयोग ब्योरों को सम्हालने के लिए, निर्णय के लिए आँकड़ों का संकलन और विशिष्ट प्रबंधकीय समस्याओं पर सलाह देने के लिए किया जाता है। कर्मचारी अनुसंधान करता है, सूचना प्रदान करता है और सिफारिशें पेश करता है जो निर्णय लेते हैं। रेखा और कर्मचारी संगठन नीचे चित्र में दिखाया गया है।

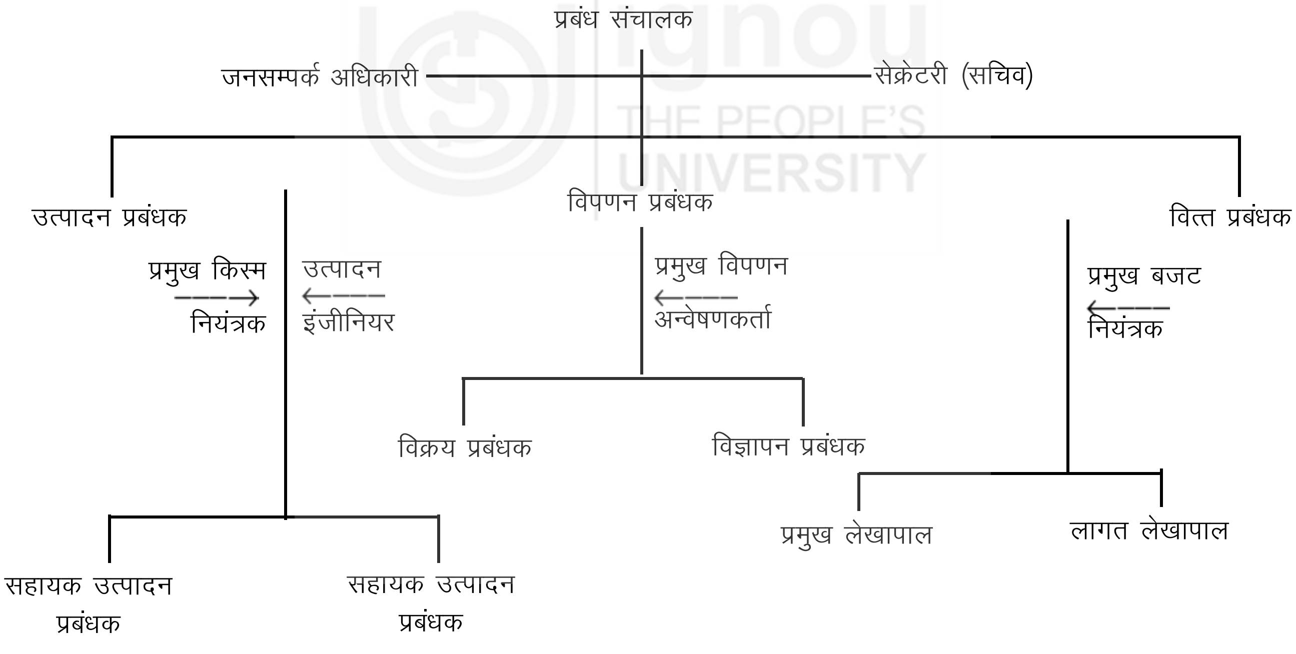
प्रबंध संचालक
जनसम्पर्क अधिकारी
सेक्रेटरी (सचिव)
उत्पादन प्रबंधक
विपणन प्रबंधक
वित्त प्रबंधक
प्रमुख किस्म नियंत्रक
उत्पादन इंजीनियर
प्रमुख विपणन अन्वेषणकर्ता
प्रमुख बजट नियंत्रक
विक्रय प्रबंधक
विज्ञापन प्रबंधक
प्रमुख लेखापाल
लागत लेखापाल
सहायक उत्पादन प्रबंधक
सहायक उत्पादन प्रबंधक

चित्र 11.7: संगठनात्मक चार्ट द्वारा रेखा एवं कर्मचारी संगठन का प्रदर्शन

रेखा और कर्मचारी संगठन के गुण : रेखा और कर्मचारी संगठन में रेखा संगठन के सभी गुण विद्यमान हैं। इसके अलावा इसमें निम्नलिखित गुण हैं :

i) रेखा प्रबंधकों को कर्मचारी विशेषज्ञों के विशिष्ट ज्ञान से लाभ होता है।

ii) कई समस्याएँ जिन्हें रेखा संगठन में तुच्छ जाना जाता है अथवा जिनका प्रबंध ठीक ढंग से नहीं किया जाता है उनका समाधान रेखा और कर्मचारी संगठन में कर्मचारी विशेषज्ञों की सहायता से उचित ढंग से किया जा सकता है।

iii) कर्मचारी विशेषज्ञ रेखा प्रबंधकों को विशिष्ट कार्यों जैसे बजट बनाना, कर्मचारी चुनाव एवं प्रशिक्षण, जन सम्पर्क, आदि पर अधिक ध्यान देने के झंझट से मुक्त कर देते हैं।

iv) कर्मचारी विशेषज्ञ रेखा अधिकारियों को सही समय पर सही प्रकार की उपयुक्त सूचना प्रदान कराकर उत्तम निर्णय लेने में उनकी सहायता करते हैं एवं उन्हें कुशल परामर्श प्रदान करते हैं।

v) रेखा संगठन की तुलना में रेखा और कर्मचारी संगठन अधिक लोचदार है। रेखा प्रबंधकों को सहायता पहुँचाने के लिए विभिन्न स्तरों पर सामान्य कर्मचारियों को नियुक्त किया जा सकता है।

रेखा और कर्मचारी संगठन के दोष : संगठन के इस स्वरूप का सबसे बड़ा दोष है रेखा और कर्मचारी के बीच संघर्ष। रेखा और कर्मचारी में संघर्ष का प्रमुख स्रोत उनके दृष्टिकोण एवं बोध में अंतर है। जब उनमें से कोई एक दूसरे का दृष्टिकोण नहीं समझ पाता है तो संघर्ष उठ खड़ा होता है और जब कभी रेखा और कर्मचारी में संघर्ष उठता है तो दोनों ही पक्ष दूसरे पक्ष के व्यवहार को संघर्ष का कारण बताने का प्रयत्न करते हैं। रेखा अधिकारियों द्वारा बताए जाने वाले रेखा और कर्मचारी में संघर्ष के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं–

i) कर्मचारी अधिकारी रेखा अधिकार पर अतिक्रमण करते हैं। वे रेखा प्रबंधकों के कार्य में हस्तक्षेप करते हैं और उन्हें बताने का प्रयत्न करते हैं कि कार्य कैसे किया जाये।

ii) कर्मचारी विशेषज्ञ शैक्षिक व्यक्ति होते हैं और संस्था की व्यावहारिक समस्याओं से अवगत नहीं होते हैं।

iii) चूंकि कर्मचारी अधिकारी किसी परिणाम के लिए प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार नहीं होते हैं इसलिए वे अति ईर्ष्यालु होते हैं और ऐसे कामों की सिफारिश करते हैं जो व्यावहारिक नहीं हैं।

iv) कर्मचारी अधिकारी सम्पूर्ण संगठन को सापेक्ष रूप से देखने में असमर्थ होते हैं क्योंकि वे खास क्षेत्र के ही विशेषज्ञ होते हैं।

v) कर्मचारी अधिकारियों की सफल निर्णयों का श्रेय स्वयं लेने की प्रवृति होती है और यदि निर्णय सफल नहीं होते तो दोष रेखा अधिकारी पर डाल देते हैं।

कर्मचारी अधिकारियों द्वारा बताए गए रेखा और कर्मचारी में संघर्ष के प्रमुख कारणों का विवेचन नीचे किया गया हैः

i) रेखा प्रबंधक सामान्यतः विशेषज्ञों की सेवाओं का समुचित प्रयोग नहीं करते।

ii) कभी–कभी अंतिम उपाय के रूप में कर्मचारी सलाह ली जाती है क्योंकि रेखा अधिकारी कर्मचारियों से सलाह लेना अपनी पराजय स्वीकार करने जैसा समझते हैं।

iii) कर्मचारी विशेषज्ञों के पास अपने विचारों को क्रियान्वित कराने का अधिकार नहीं होता है। इससे उनमें निराशा पैदा होती है।

iv) रेखा प्रबंधक कर्मचारी विशेषज्ञों द्वारा दिये गए नये विचारों का प्रायः विरोध करते हैं और कभी–कभी कर्मचारी विशेषज्ञों की दलीलें सुनने के लिए तैयार नहीं होते हैं।

रेखा–कर्मचारी संबंधों को सौहार्दपूर्ण बनाना : रेखा और कर्मचारी के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध बनाने के लिए निम्नलिखित कार्य किए जाने चाहिए :

i) रेखा और कर्मचारी अधिकार की सीमाएँ स्पष्ट रूप से निश्चित कर दी जानी चाहिए। यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि विभिन्न निर्णयों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी रेखा अधिकारियों की है और कर्मचारी का दायित्व रेखा अधिकारियों को केवल परामर्श एवं सेवा प्रदान करना है।

ii) रेखा अधिकारियों को कर्मचारी परामर्श पर उचित ध्यान देना चाहिए और कर्मचारी परामर्श स्वीकार न करने के कारण बताने चाहिए।

iii) कर्मचारी विशेषज्ञों को नये विचारों के क्रियान्वयन की कठिनाइयों को समझने की कोशिश करनी चाहिए। यदि कभी उनके परामर्श को नहीं माना जाता है तो उन्हें इसे अपनी बेइज्जती नहीं समझनी चाहिए।

iv) रेखा और कर्मचारी अधिकारियों को एक दूसरे के दिशा (orientation) को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। उद्यम के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उन्हें सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। कुछ लोग तर्क देते हैं कि रेखा और कर्मचारी में अंतर एक पुरानी अवधारणा है और इसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए। उनका तर्क है कि संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में योगदान के आधार पर कार्यकलाप को अलग–अलग करना निरर्थक है। यही नहीं, हाल में रेखा अधिकार द्वारा प्रदर्शित शीर्ष संबंधों की तुलना में क्षैतिजिक एवं कर्णवत संबंध एवं कार्य प्रवाह अधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं।

रेखा संगठन पर रेखा एवं कर्मचारी संगठन की श्रेष्ठता

रेखा और कर्मचारी संगठन की प्रसिद्धि का कारण यह है कि प्रबंध की कुछ समस्याएँ इतनी जटिल हो गयी हैं कि उनसे निपटने के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता है जो कर्मचारी अधिकारियों द्वारा मिल सकती है। उदाहरण के लिए एक सहायक विभाग (staff department) के रूप में उच्च कार्याधिकारियों एवं रेखा अधिकारियों को कर्मचारी मामलों (personnel matters) पर परामर्श देने के लिए कर्मचारी विभाग (personnel department) की स्थापना की जाती है। इसी प्रकार लेखा, लेखांकन, कानूनी मुद्दों एवं जनसम्पर्क संबंधी समस्याओं पर परामर्श देने के लिए कानून एवं जन सम्पर्क विभागों की स्थापना की जा सकती है।

11.7.3 रेखा संगठन बनाम रेखा और कर्मचारी संगठन

रेखा संगठन	रेखा और कर्मचारी संगठन
रेखा उन पदों को कहते हैं जो संस्था के प्राथमिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जिम्मेदार हैं।	कर्मचारी उन पदों को कहते हैं जो संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में रेखा अधिकारियों को परामर्श एवं सेवा प्रदान करने के लिए जिम्मेदार हैं।
रेखा अधिकारियों की सहायता और सलाह के लिए विशेषज्ञ नहीं होते हैं।	रेखा अधिकारियों की सहायता एवं सलाह के लिए विशेषज्ञ होते हैं जिन्हें कर्मचारी कहा जाता है।
रेखा और कर्मचारी में संघर्ष के लिए कोई स्थान नहीं होता। यह नियोजित विशिष्टीकरण पर आधारित नहीं है।	रेखा और कर्मचारी में उनकी अपनी भूमिका के बारे में सर्वदा संघर्ष का जोखिम रहता है। यह नियोजित विशिष्टीकरण पर आधारित है।
कुछ रेखा अधिकारी प्रमुख अधिकारी हो जाते है क्योंकि वे ऐसे पदों पर होते हैं जिन पर संस्था का जीवन निर्भर करता है।	रेखा और कर्मचारी संगठन में ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि इसमें कर्मचारी अधिकारी रेखा अधिकारियों के साथ परिणामों के श्रेय में भागीदार होते हैं।

11.7.4 कार्यात्मक संगठन (Functional Organisation)

कार्यात्मक अधिकार रेखा और कर्मचारी अधिकार के बीच की स्थिति है। यह पूरे उद्यम विशेषज्ञों को उच्च पदों पर रखने का एक साधन है। यह सम्बद्ध कार्याधिकारी को दूसरे विभाग के व्यक्तियों को उनके काम से सम्बंधित आदेश देने का सीमित अधिकार देता है। कार्यात्मक अधिकार विभिन्न विभागों के कार्यात्मक निदेशन तक सीमित है। यह सम्पूर्ण संगठन में कार्यात्मक क्षेत्रों के निष्पादन की योग्यता और एकरूपता बनाये रखने में सहायता करता है।

कार्यात्मक संगठन के अंतर्गत उद्यम के विभिन्न कार्यकलाप कुछ कार्यों जैसे उत्पादन, विपणन, वित्त, कर्मचारी आदि के अनुसार वर्गीकृत किये जाते हैं और कार्यात्मक विशेषज्ञों के आधीन रखे जाते हैं। एक कार्यात्मक अध्यक्ष अपने क्षेत्र विशेष में अधीनस्थों का निर्देशन करता है। इसका तात्पर्य यह है कि अधीनस्थ एक वरिष्ठ से ही निर्देश प्राप्त नहीं करता है बल्कि, विभिन्न कार्यात्मक विशेषज्ञों से भी निर्देश पाता है। दूसरे शब्दों में, अधीनस्थ विभिन्न कार्यों के निष्पादन के लिए विभिन्न कार्यात्मक विशेषज्ञों के प्रति जिम्मेदार होते हैं।

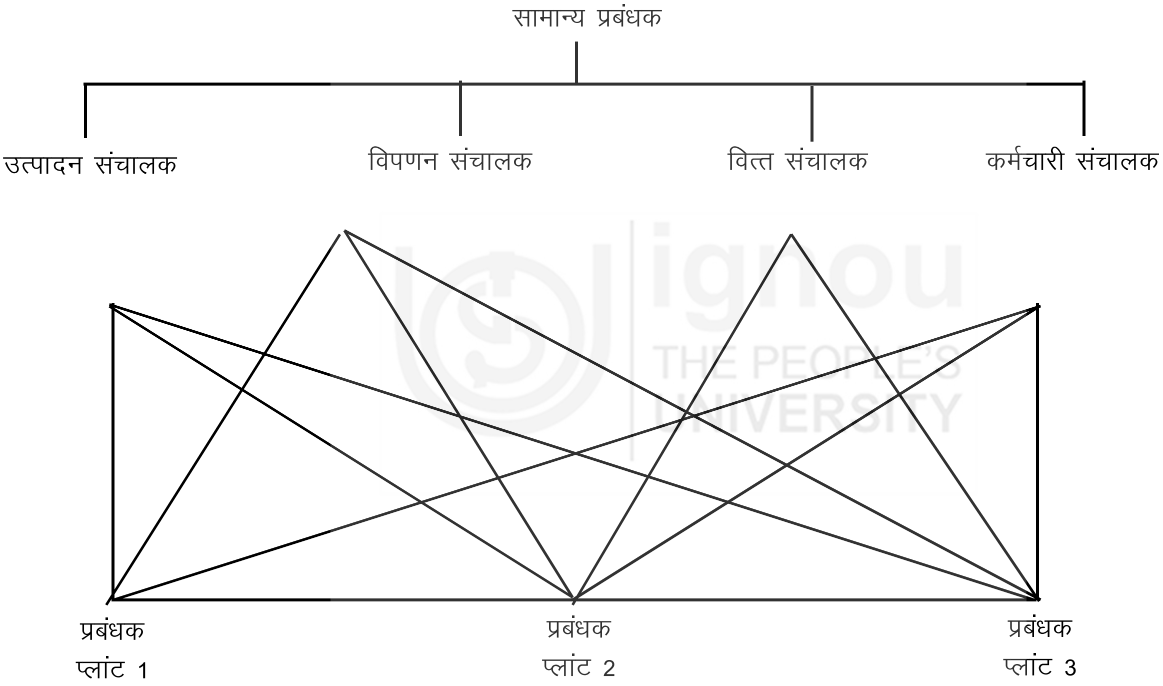

चित्र 11.8: संगठनात्मक चार्ट द्वारा कार्यात्मक संगठन का प्रदर्शन

एफ. डब्ल्यू टेलर ने विशिष्टता के आधार पर निर्माणी क्रियाओं के नियोजन और नियंत्रण के लिए कार्यात्मक संगठन का विकास किया था। लेकिन व्यवहार में कार्यात्मकता संगठन संरचना के उच्च स्तरों तक ही सीमित है और, टेलर के सुझाव के विरुद्ध, इसे संस्था के निचले स्तरों तक प्रयोग में नहीं लाया जाता है।

कार्यात्मक संगठन के गुण

i) **विशिष्टीकरण** : कार्यात्मक संगठन कार्य विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त करने में सहायता पहुँचाता है। प्रत्येक क्रियात्मक अधीक्षक अपने क्षेत्र में निपुण होता है और अधीनस्थ को अपने क्षेत्र में श्रेष्ठ निष्पादन में सहायता कर सकता है।

ii) **कार्याधिकारी विकास** : एक कार्यात्मक प्रबंधक के लिए केवल एक कार्य में निपुणता प्राप्त करना आवश्यक होता है। इससे कार्याधिकारियों के विकास में सरलता होती है।

iii) **कार्यभार में कमी** : कार्यात्मक संगठन उच्च कार्याधिकारियों पर काम के दबाव को कम करता है। संगठन में प्रत्येक स्तर पर निरीक्षण होता है और प्रत्येक कार्यात्मक अधीक्षक केवल अपने कार्यात्मक क्षेत्र पर ध्यान रखता है।

iv) **विस्तार का अवसर** : रेखा संगठन की अपेक्षा कार्यात्मक संगठन विस्तार के अधिक अवसर प्रदान करता है। इसमें कुछेक रेखा प्रबंधकों की सीमित कार्यक्षमता की समस्या सामने नहीं आती है।

v) **श्रेष्ठ नियंत्रण** : कार्यात्मक प्रबंधकों का निपुण ज्ञान से भी संगठन में नियंत्रण एवं निरीक्षण सुविधाजनक हो जाता है।

कार्यात्मक संगठन के दोष : कार्यात्मक संगठन निम्न दोषों से ग्रसित है :

i) **दोहरा आदेश** : कार्यात्मक संगठन आदेश की एकता के सिद्धांत की अवहेलना करता है क्योंकि एक व्यक्ति कई नायकों के प्रति जिम्मेदार होता है।

ii) **जटिलता** : कार्यात्मक संगठन का परिचालन इतना जटिल है कि कार्यकर्ता इसे आसानी से नहीं समझ सकते। कार्यकर्ताओं का निरीक्षण कई मालिकों द्वारा किया जाता है। इससे संगठन में भ्रम पैदा होता है।

iii) **उत्तराधिकार की समस्या** : कार्यात्मक संगठन विशेषज्ञों को विकसित करता है न कि सामानज्ञ (generalist) को। इससे उच्च स्तर के पदों के उत्तराधिकार में समस्या उत्पन्न हो सकती है।

iv) **सीमित दृष्टिकोण** : एक कार्यात्मक प्रबंधक अपने चारों ओर सीमा रेखा बना लेता है और अपने विचार के संदर्भ में ही सोचता है न कि सम्पूर्ण संस्था के। इससे व्यावसायिक समस्याओं से निपटते समय व्यापक दृश्य की कमी पैदा हो जाती है।

v) **निर्णय लेने में विलम्ब** : जब किसी निर्णय समस्या में एक से अधिक विशेषज्ञ सम्बद्ध होते हैं तो सामान्यतः कार्यात्मक कार्याधिकारियो में समन्वय की कमी होती है और निर्णय लेने में विलम्ब होता है।

11.7.5 रेखा संगठन बनाम कार्यात्मक संगठन

रेखा संगठन	कार्यात्मक संगठन
अधिकार–रेखा लम्बवत होती है क्योंकि यह सोपानिक श्रृंखला के सिद्धांत का अनुसरण करती है।	अधिकार–रेखा कार्यात्मक या कर्णवत होती है। जहाँ कहीं भी कोई कार्य विशेष सम्पन्न हो रहा है वहाँ कार्यपालक प्रबंधक का अपने कार्य पर अधिकार होता है।
रेखा प्रबंधक सामानज्ञ होते हैं। इसमें आदेश की एकता होती है।	कार्यात्मक प्रबंधक अपने कार्य–क्षेत्र में विशेषज्ञ होते हैं। इसमें आदेश की एकता का अनुसरण नहीं किया जाता है क्योंकि प्रत्येक अधीनस्थ अपने रेखा अधिकारी और कार्यात्मक अधिकारी से निर्देश प्राप्त करता है।
इसमें कड़ा अनुशासन होता है।	इसमें अनुशासन ढीला होता है।
यह लघु–स्तरीय कार्य के लिए उपयुक्त है।	यह दीर्घस्तरीय कार्यों के लिए उपयुक्त है, जहाँ कुछ क्षेत्रों में निपुण ज्ञान आवश्यक है।

बोध प्रश्न 2

1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

   i) विभागीकरण के आधार का चुनाव करते समय विशिष्टीकरण को ध्यान में रखना चाहिए परंतु .... से बचना चाहिए।

   ii) अंतर्विभागीय संघर्षों को कम करने के लिए बनाये जाने वाले विभागों की ....स्पष्ट रूप से निश्चित की जानी चाहिए।

   iii) विभागीकरण में संगठन के केवल तकनीकी पहलुओं पर ही नहीं बल्कि .... पहलुओं पर भी उचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

   iv) रेखा संगठन में .... ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है और आदेश की श्रृंखला का रूप लेता है।

   v) रेखा और कर्मचारी संघर्ष मुख्यतः उनके .... में अंतर के कारण है।

2) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत।

   i) कार्यात्मक संगठन संरचना के उच्च स्तरों तक ही सीमित है।

   ii) विभागीय अधिकारियों को उनके पसंद के अनुरूप ही उनके विभागों को चलाने की पूर्ण स्वायत्तता दी जाती है।

   iii) एक ही संगठन में विभागीकरण के विभिन्न आधारों का प्रयोग किया जा सकता है।

   iv) कार्यात्मक संगठन से उच्च कार्याधिकारियों का कार्यभार अधिक हो जाता है।

   v) कर्मचारी विशेषज्ञों के पास अपने विचारों के क्रियान्वयन का अधिकार नहीं होता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

11.8 सारांश

विभागीकरण, कार्यकलाप को निश्चित आधार पर वर्गीकृत करने की प्रक्रिया, संगठन का एक महत्वपूर्ण तत्व है। इसे कार्य, उत्पाद, क्षेत्र, ग्राहक, प्रक्रिया या प्रोजेक्ट के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। परंतु आधार चाहे जो भी हो, विभागीकरण संगठनात्मक उद्देश्यों को मितव्ययता एवं कुशलतापूर्वक प्राप्ति को बढ़ावा देने की ओर निर्देशित होना चाहिए।

विभागीकरण के आधार का चुनाव करते समय विभिन्न तत्वों जैसे विशिष्टीकरण, मितव्ययता, प्रमुख क्षेत्रों का मूल्यांकन, न्यूनतम संघर्ष, समन्वय, नियंत्रण और मानवीय विचार को ध्यान में रखना चाहिए।

विभागीकरण बड़े एवं जटिल संगठन को छोटे, लोचपूर्ण, प्रशासनिक इकाइयों में बाँटने का साधन है। ऐसा करने से संगठन को विशिष्टीकरण, प्रशासनिक नियंत्रण, जिम्मेदारी का निर्धारण, स्वतंत्रता या स्वायत्तता और प्रबंधकों के विकास का लाभ प्राप्त होता है।

संगठन से संबंधित दूसरी अवधारणा अधिकार संबंधों का स्वरूप है जो उद्यम में सम्प्रेषण एवं समन्वय का प्रारूप निश्चित करता है। संगठन स्वरूप के तीन मूलभूत प्रकार हैं–रेखा या संगठन, रेखा और कर्मचारी संगठन, और कार्यात्मक संगठन। यद्यपि रेखा और कर्मचारी की पुरानी संकल्पना समझा जाता है फिर भी इनका प्रयोग किया जाता है।

कई अवसरों पर रेखा और कर्मचारी में आपसी संघर्ष होता है जिसका प्रमुख कारण इन दोनों के दृष्टिकोण एवं बोध में अंतर है। संगठन के हित में इस संघर्ष को न्यूनतम करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। कार्यात्मक संगठन संस्था के उच्च स्तरों तक ही सीमित रखा जाना चाहिए।

11.9 शब्दावली

अधिकार	इसका तात्पर्य एक संस्था में किसी पदाधिकारी को कुछ अधिकार (rights) देने से है। इसमे निर्णय लेने और उनके क्रियान्वयन का अधिकार सम्मिलित है।
विभागीकरण	यह कार्यकलाप को कुछ सुस्पष्ट परिभाषित आधारों पर वर्गीकृत करने की प्रक्रिया है।
कार्यात्मक अधिकार	यह अधिकार इस प्रकार के अधिकार रखने वाले लोगों को, दूसरे विभाग के लोगों को, उनके कार्य के सम्बन्ध में आदेश देने के सीमित अधिकार देता है।
रेखा अधिकार	यह संगठन के उन पदों और तत्वों की ओर संकेत करता है जिनके पास जिम्मेदारी और अधिकार हैं और जो प्राथमिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उत्तरदायी हैं।
कर्मचारी अधिकार	कर्मचारी का अर्थ उन तत्वों से है जिनके पास उद्देश्यों की प्राप्ति में रेखा अधिकारियों को परामर्श एवं सहायता प्रदान करने की जिम्मेदारी एवं अधिकार हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1) i) गलत, ii) गलत, iii) सही, iv) गलत, v) सही

   2) i) सूचना, ii) लागतें, iii) क्षेत्रीय, iv) प्रक्रियाएँ, v) समन्वय।

2. 1) i) अति–विशिष्टीकरण, ii) न्याय–क्षेत्र, iii) मानवीय, iv) अधिकार, v) बोध/दृष्टिकोण

   2) i) गलत, ii) गलत, iii) सही, iv) गलत, v) सही

11.11 स्वपरख प्रश्न

1) विभागीकरण के अर्थ एवं महत्व का विवेचन कीजिए।

2) एक बड़ी व्यावसायिक संस्था के लिए, विभागीकरण की रूपरेखा का सुझाव दीजिए। जिसके विक्रय का कार्य–क्षेत्र पूरे देश में है। इसके गुण एवं दोषों का विवेचन कीजिए।

3) उत्पाद विभागीकरण और प्रक्रिया विभागीकरण में अंतर कीजिए। दोनों के लाभ बताइए।

4) कार्यकलाप के विभागीकरण से क्या लाभ मिलते हैं? पूर्ण रूप से विवेचन कीजिए।

5) विभागीकरण का एक उपयुक्त आधार चुनते समय वे कौन से तत्व हैं जिन पर विचार करना चाहिए?

6) एक बड़े निर्माणी संस्था का प्रमुख कार्याधिकारी उत्पादन विभाग और कर्मचारी विभाग के बीच बार–बार होने वाले संघर्ष से परेशान है। संस्था रेखा और कर्मचारी प्रारूप पर संगठित है। इस संघर्ष के कौन से सम्भव कारण हो सकते हैं और इसे कम करने तथा इसे समाप्त करने के लिए क्या किया जा सकता है

7) रेखा, कार्यात्मक और रेखा एवं कर्मचारी संगठन की तुलना कीजिए ? एक बड़ी निर्माणी संस्था के लिए इनमें से कौन उपयुक्त होगा ?

टिप्पणी : ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए, किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 12 प्रत्यायोजन और विकेंद्रीकरण

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 प्रत्यायोजन

- 12.2.1 प्राधिकार का प्रत्यायोजन
- 12.2.2 प्रत्यायोजन के तत्व
- 12.2.3 प्रत्यायोजन के सिद्धांत
- 12.2.4 प्रत्यायोजन का महत्व
- 12.2.5 प्रभावी प्रत्यायोजन में रुकावटें
- 12.2.6 प्रभावी प्रत्यायोजन के उपाय

12.3 विकेंद्रीकरण

- 12.3.1 प्राधिकार के प्रत्यायोजन और विकेंद्रीकरण में अंतर
- 12.3.2 विकेंद्रीकरण के लाभ और सीमाएँ
- 12.3.3 विकेंद्रीकरण की मात्रा निर्धारित करने वाले कारक

12.4 सारांश

12.5 शब्दावली

12.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.7 स्वपरख प्रश्न

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- अधिकार के प्रत्यायोजन की विचारधारा, प्रक्रिया और इसके महत्व को बता सकेंगे,
- अधिकार के प्रत्यायोजन के सिद्धांतों का वर्णन कर सकेंगे,
- अधिकार के प्रत्यायोजन में आने वाली रुकावटों की पहचान कर सकेंगे तथा प्रत्यायोजन को प्रभावी बनाने के लिए सुझाव दे सकेंगे,
- केंद्रीकरण तथा विकेंद्रीकरण से उत्पन्न परिणामों का विश्लेषण कर सकेंगे तथा प्रत्यायोजन और विकेंद्रीकरण में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे,
- विकेंद्रीकरण के लाभ और दोषों को बता सकेंगे,
- एक उपक्रम में अधिकारों के प्रत्यायोजन की सीमा–निर्धारण करने वाले कारकों का वर्णन कर सकेगे।

12.1 प्रस्तावना

सफल प्रबंध के लिए प्रत्यायोजन महत्वपूर्ण आवश्यकताओं में से एक है। प्रत्यायोजन एक विचारधारा ही नहीं, वरन् एक प्रक्रिया भी है। विचारधारा अथवा अवधारणा के रूप में इसका अर्थ है, एक प्रबंधक द्वारा अपने अधीनस्थ के साथ कार्य विभाजन करना। किन्तु प्रबंधक

द्वारा अपने कार्य–भार को अपने अधीनस्थ के साथ विभाजित करना श्रम–विभाजन से भिन्न होता है। यह आदेश देने के नित्य–कर्म (routine) से भी भिन्न होता है। प्रत्यायोजन में विशेष प्रकार का कार्य सौंपा जाता है और यह नियोजन, अधीनस्थों का मूल्यांकन, पारस्परिक सम्प्रेषण और प्रबंधक तथा अधीनस्थ के बीच आपसी विश्वास पर निर्भर करता है।

इस इकाई में हम प्रत्यायोजन के अर्थ व प्रक्रिया, इसके महत्व, प्रत्यायोजन के सिद्धांत और प्रत्यायोजन को प्रभावी बनाने के उपायों का वर्णन करेंगे। आप अधिकारों के केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण की अवधारणा, प्रत्यायोजन तथा विकेंद्रीकरण में, अंतर और विकेंद्रीकरण के लाभ व सीमाओं का भी इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

12.2 प्रत्यायोजन (Delegation)

किसी भी उपक्रम में एक ही व्यक्ति सभी कार्य स्वयं नहीं कर सकता तथा अपने समस्त कर्त्तव्यों और दायित्वों को पूरी तरह निभाने में समर्थ नहीं हो सकता। बड़े उपक्रम में तो एक ही व्यक्ति को समस्त कार्यों को स्वयं पूरा करना शारीरिक रूप से असंभव है। उसका चातुर्य तो उसके द्वारा अन्य व्यक्तियों से कार्य करवाने की उसकी कुशलता पर निर्भर करता है। जैसे–जैसे एक उपक्रम का आकार बढ़ता जाता है और प्रबंधक का कार्य उसकी व्यक्तिगत क्षमता से अधिक हो जाता है, उसकी कुशलता अपने आपको बहुगुणित करने में निहित होती जाती है। अपने अधीनस्थों को प्रशिक्षित कर तथा उनमें अपने अधिकारों तथा दायित्वों को बाँटकर वह ऐसा करता है। अधिकार प्रत्यायोजन के माध्यम से वह अधिक उपलब्धि प्राप्त कर पाता है। अधिकार हस्तांतरण में वह अपने कार्य–भार और दायित्वों को अन्य व्यक्तियों के साथ बाँटता है। अस्तु, शक्ति अथवा अधिकार का कुछ निर्धारित कार्यों और कर्त्तव्यों का निष्पादन करने के लिए अन्य व्यक्तियों के साथ विभाजन प्रत्यायोजन कहलाता है।

प्रत्यायोजन का अर्थ है देना अथवा सौंपना; अस्तु प्रबंधक अपने अधिकारों को, कार्य के रूप में कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए, अन्य व्यक्तियों (अपने अधीनस्थों) को देता अथवा सौंपता है।

ओ. जैफ हैरिस के अनुसार, यह एक अधीनस्थ प्रबंधक को स्वतंत्र रूप से एक निर्धारित विधि से कार्य करने का अधिकार प्रदान करना है। कार्य करने, निर्णय लेने, साधनों को प्राप्त करने, अन्य व्यक्तियों के बदले कार्य का निष्पादन करने के अधिकार को एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को सौंपना अधिकार का प्रत्यायोजन कहा जाता है। कार्य से संबंधित उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए ऐसा किया जाता है।

एल. ए. ऐलन ने प्रत्यायोजन की परिभाषा इस प्रकार दी है, ''दूसरे व्यक्ति को कार्य अथवा अधिकार तथा दायित्व का कुछ भाग सौंपना तथा कार्य–निष्पादन के लिए जवाबदेही सर्जित करना प्रत्यायोजन है।'' किसी कार्य को पूरा करने की क्रिया उत्तरदायित्व कहलाती है। सौंपे हुए कार्य के निष्पादन को संभव बनाने के लिए आवश्यक शक्ति तथा हक का योग अधिकार कहलाता है। उत्तरदायित्व को पूरा करने तथा निर्धारित मानकों के अनुसार कार्य निष्पादन करने की जिम्मेदारी को जवाबदेही (accountability) कहा जाता है। अपने अधिकारी को, जिसे उसने कार्य–निष्पादन की सूचना देनी होती है, उत्तरदायित्वों को पूरा करने का विवरण देना व्यक्ति की जिम्मेदारी होती है।

12.2.1 प्राधिकार का प्रत्यायोजन

एक व्यक्ति उपक्रम के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक सभी कार्यों को जिस प्रकार अकेला नहीं कर सकता; उसी प्रकार उपक्रम के संवर्धन के साथ, एक ही व्यक्ति द्वारा सभी निर्णयों को लेने के प्राधिकार का प्रयोग करना भी असंभव होता है। जैसा कि आप जानते हैं कि एक प्रबंधक द्वारा प्रभावपूर्ण रीति से निगरानी रखने तथा उनके बारे में निर्णय लेने के लिए व्यक्तियों की संख्या के निर्धारण की सीमा निश्चित की हुई होती है। संख्या की इस सीमा का उल्लंघन होते ही अधीनस्थों को प्राधिकार सौंप देने चाहिए, जिससे वे सौंपे हुए प्राधिकारों की सीमा के भीतर निर्णय ले सकेंगे।

अब प्रश्न यह है कि जब अधिकारी ने निर्णय लेने का प्राधिकार अपने अधीनस्थ को सौंपा हुआ है तो वह अधीनस्थ फिर प्राधिकार का प्रत्यायोजन कैसे करेगा ? स्पष्ट है, वरिष्ठ अधिकारी उस अधिकार का जो उसके पास है ही नहीं, आरोपित प्रत्यायोजन नहीं कर सकता। यह भी स्पष्ट है कि वरिष्ठ अधिकारी अपने समस्त अधिकारों का प्रत्यायोजन उस समय तक नहीं कर सकते, जब तक कि वे अपने पद को ही अधीनस्थ को नहीं सौंप देते। प्रत्यायोजन की सम्पूर्ण प्रक्रिया चार चरणों में पूरी की जाती है। ये चरण हैं :

1) एक पद पर कार्य कर रहे व्यक्तियों से आशा किए जाने वाले परिणामों का निर्धारण;
2) कार्यों को व्यक्तियों को सौंपना;
3) उक्त कार्यों को निष्पादित करने के लिए अधिकारों का सौंपा जाना;
4) कार्य निष्पत्ति के लिए व्यक्तियों की जवाबदेही निर्धारित करना।

अस्तु, प्रत्यायोजन एक प्रक्रिया है, जो एक प्रबंधक द्वारा उसको सौंपे गए कार्यों को विभाजित करने के लिए अपनाई जाती है, जिससे वह अपने पद के कारण केवल वही कार्य निष्पादित करता है, जो वह प्रभावपूर्ण रीति से कर सकता है। किन्तु प्रत्यायोजन तथा कार्य के सौंपने (assignment) में अंतर है। प्रत्यायोजन में प्रधान एजेंट का संबंध रहता है, जबकि कार्य सौंपने में स्वामी–सेवक का संबंध रहता है। एक कर्मचारी को कार्य सौंपने की झलक उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य–वर्णन से मिल जाती है, जबकि प्रत्यायोजित कार्य उसके दैनिक कार्यों से भिन्न हो सकते हैं।

एक प्रबंधक अथवा कर्मचारी द्वारा निर्धारित ढंग से कार्य निष्पादित करने का प्रत्यायोजन एक वैधानिक अधिकार होता है। यह उसे अपने निरीक्षक से बिना पूछे स्वतंत्र रूप से कार्य करने का अधिकार प्रदान करता है, किन्तु निरीक्षक निर्धारित सीमा तथा उपक्रम के उद्देश्यों, नीतियों, नियमों तथा कार्यविधियों की सीमा के भीतर ही कार्य कर सकता है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रत्यायोजन में निम्नलिखित बातें शामिल हैं:

i) निष्पादन के लिए दूसरे व्यक्ति को कार्य सौपना;
ii) कार्य–निष्पत्ति के लिए शक्ति, हक अथवा अधिकार देना;
iii) प्रत्यायोजन स्वीकार करने वाले व्यक्ति के द्वारा उत्तरदायित्व का सृजन करना।

12.2.2 प्रत्यायोजन के तत्व

प्रत्यायोजन के तीन स्पष्ट तत्व हैं– 1) कार्य अथवा कर्त्तव्य को निर्धारित करना, 2) अधिकार की शक्ति प्रदान करना, 3) कर्त्तव्य उत्तरदायित्व अथवा जवाबदेही पैदा करना।

i) कार्य अथवा कर्त्तव्य को निर्धारित करना : पहला चरण है अधिकार प्रत्यायोजनकर्ता (वरिष्ठ अधिकारी) द्वारा प्रत्यायोजिती (delegatee) (अधीनस्थ) को कार्यों का सौंपना।

कर्त्तव्यों अथवा कार्यों को सौंपने के समय, प्रत्यायोजनकर्ता को पहले से ही प्रत्यायोजक (delegator) को सौंपे जाने वाले कार्यों पर विचार कर लेना चाहिए। अस्तु, सौंपे जाने वाले कार्य अथवा कर्त्तव्य की पहचान व परिभाषा पहले से ही कर लेनी चाहिए। उदाहरण के लिए, जब एक विक्रय प्रबंधक अपने अधीनस्थ की मंडलीय (divisional) विक्रय कार्यालय स्थापित करने के लिए कहता है तो उसे स्पष्ट रूप से स्थापना के उद्देश्य, विक्रय क्षेत्र आदि का उल्लेख कर लेना चाहिए।

2) **प्राधिकार को शक्ति प्रदान करना** : अधिकार को सौंपना प्रत्यायोजन का दूसरा चरण है। सौंपे हुए कार्य को निष्पादित करने के लिए दिए जाने वाले हक व शक्ति को अधिकार की परिभाषा कहा जा सकता है। इन शक्तियों में निष्पादित कार्य की निष्पत्ति के लिए आवश्यक साधनों की प्राप्त करने का अधिकार भी शामिल हो सकता है। पर्याप्त अधिकार न होने पर अधीनस्थ से अपने कार्य अथवा कर्तव्य को पूरा करने की आशा नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए, उपरोक्त उदाहरण में जब एक विक्रय प्रबंधक अपने अधीनस्थ को प्रमंडलीय कार्यालय स्थापित करने के लिए कहता है तो उसे आवश्यक साधनों को जुटाने का अधिकार भी प्रदान करना पड़ता है।

3) **जवाबदेही** : एक बार जब कर्त्तव्यों को निर्धारित कर अधीनस्थ को अधिकार प्रदान कर दिया जाता है तो प्रत्यायोजक कार्य को पूरा करने के लिए कर्त्तव्य अथवा जवाबदेही का सृजन कर देता है। कार्य को पूरा करने का कर्त्तव्य और प्रस्थापित व निर्देशित मानदंडों के अनुरूप उत्तरदायित्व स्वीकार करना, जवाबदेही कहलाती है। इस प्रकार, जवाबदेही एक व्यक्ति का अपने दायित्वों को पूरा करने का विवरण देने का कर्तव्य है, जो वह अपने नियोक्ता को रिपोर्ट करता है। अधीनस्थ सदैव सौंपे हुए कार्य को निष्पादित करने के लिए अपने वरिष्ठ अधिकारी के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। वह अपने उत्तरदायित्व को किसी अन्य व्यक्ति पर नहीं डाल सकते। स्पष्ट है कि जवाबदेही पद के साथ जुड़ी हुई रहती है। इस प्रकार वरिष्ठ अधिकारी जवाबदेही के द्वारा अपने अधीनस्थ के कार्य–निष्पादन पर नियंत्रण कर सकता है। प्रत्यायोजक, प्रतिवेदनों, बैठकों तथा मूल्यांकन द्वारा प्रत्यायोजिती के प्रति जवाबदेह रहता है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित कथनों में कौन–सा कथन सही है और कौन–सा गलत ?

   i) जब एक व्यक्ति उसके नाम पर दूसरे को बिना जिम्मेदारी उठाए सभी प्रकार के कार्यों को करने के लिए स्वतंत्रता प्रदान करता है, तो यह प्रत्यायोजन कहलाता है।

   ii) प्रत्यायोजन का उद्देश्य दूसरे व्यक्ति के साथ कार्य–विभाजन करना होता है, जिसका अर्थ श्रम–विभाजन होता है।

   iii) कार्य को सौंपना, अधिकार प्रदान करना तथा दायित्व का सृजन प्रत्यायोजन में किया जाता है।

   iv) जवाबदेही के माध्यम से एक प्रबंधक अपने अधीनस्थ के कार्य–निष्पादन पर नियंत्रण कर सकता है।

   v) प्रत्यायोजित कर्त्तव्य सदैव अधीनस्थ के नैतिक कर्त्तव्यों का भाग होते हैं।

2) कोष्ठक में दिए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:–

   i) प्रत्यायोजन .... का संबंध स्थापित करता है।

   (स्वामीसेवक / स्वामी–एजेंट / स्वामी–श्रमिक)

ii) प्रक्रिया के रूप में, प्रत्यायोजन का अर्थ वरिष्ठ अधिकारी के .... को अधीनस्थ को सौंपना होता है। (कार्य / प्राधिकार / दायित्व)

iii) सौंपे हुए कार्य को निर्दिष्ट मानकों के अनुसार, पूरा करने का दायित्व .... कहलाता है। (उत्तरदायित्व / जवाबदेही)

iv) जवाबदेही .... के साथ जुड़ी होती है। (व्यक्ति / पद / वरिष्ठ अधिकारी)

v) अधीनस्थ प्रत्यायोजिती को .... द्वारा निर्धारित सीमाओं में कार्य करना आवश्यक है। (कार्य–वर्णन / वरिष्ठ अधिकारी / अधीनस्थ)

12.2.3 प्रत्यायोजन के सिद्धांत

संगठन प्रक्रिया में प्रत्यायोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्त्वों में से एक है। प्रत्यायोजन द्वारा ही किसी उपक्रम में पारस्परिक संबंध स्थापित किए जाते हैं। पथ प्रदर्शक के रूप में प्रभावी प्रत्यायोजन के लिए कुछ सिद्धांतों को अपनाना आवश्यक है। ये सिद्धांत हैंः

1) **परिणामों द्वारा प्रत्यायोजन का सिद्धांत :** प्रत्यायोजन का उद्देश्य एक–दूसरे व्यक्ति द्वारा कार्य का निष्पादन कराने से है, क्योंकि प्रत्यायोजक की अपेक्षा यह दूसरा व्यक्ति (प्रत्यायोजिती) अपेक्षाकृत अच्छे ढंग से एक दी हुई स्थिति में कार्य का निष्पादन कर सकता है। अतः यह आवश्यक है कि कार्य अथवा कर्त्तव्य का सौंपा जाना तथा अधिकार प्रदान करना अपेक्षित परिणामों को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए। परिणाम के आधार पर प्रत्यायोजन यह प्रकट करता है कि लक्ष्य पहले ही निर्धारित कर लिए गए हैं तथा उचित ढंग से प्रत्यायोजिती को प्रेषित किए जा चुके हैं तथा उसके द्वारा समझ जा चुके हैं और सौंपा गया कार्य लक्ष्यों के अनुरूप है।

2) **क्षमता का सिद्धांत :** प्रत्यायोजिती के रूप में चुना गया व्यक्ति सौंपे जा रहे कार्य के लिए सक्षम होना चाहिए।

3) **आस्था तथा विश्वास का सिद्धांत :** उपक्रम में आमतौर पर आस्था व विश्वास का वातावरण बना रहना आवश्यक है तथा प्रत्यायोजक व प्रत्यायोजिती के बीच आस्था की भावना रहनी चाहिए। प्रत्यायोजिती को कार्य निष्पत्ति में मानसिक स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। मानसिक रूप से स्वतंत्र रहने पर प्रत्यायोजिती कार्य की अगुआई कर उसमें रुचि ले सकता है।

4) **प्राधिकार तथा दायित्व में समता का सिद्धांत :** सौंपा जाने वाला प्राधिकार दायित्व के संदर्भ में पर्याप्त होना चाहिए। यह तर्क पूर्ण भी है कि दायित्व सौंपे गए अधिकार से न तो अधिक हो और न ही कम।

5) **आदेश की एकता का सिद्धांत :** आदेश की एकता का सिद्धांत अधिकार और दायित्व के संबंध का ज्ञान कराता है। यह सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि एक अधीनस्थ का एक ही अधिकारी होना चाहिए जिसके प्रति उसकी वचनबद्धता होगी। इससे मतभ्रम और मतभेद नहीं हो पाएगा। प्रत्यायोजन में यह मान्यता रहती है कि किसी विशेष कार्य पर निर्णय लेने का विवेकाधिकार एक अधिकारी द्वारा एक ही अधीनस्थ के लिए प्रयोग किया जाता है।

6) **पूर्ण उत्तरदायित्व का सिद्धांत :** उत्तरदायित्व एक बाध्यता है जिसका न तो प्रत्यायोजन किया जा सकता है और न ही अस्थायी रूप में हस्तांतरण। प्रत्यायोजन के द्वारा कोई भी अधिकारी अपने अधीनस्थ के कार्यों के दायित्व से बच नहीं सकता क्योंकि अधिकारी ने ही अधिकार का प्रत्यायोजन कर कर्त्तव्यों का निर्धारण किया है। इसी प्रकार,

अधिकारी के प्रति अधीनस्थ का दायित्व भी पूर्ण होता है, उसे हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है।

7) **पर्याप्त सम्प्रेषण का सिद्धांत** : अधिकारी और अधीनस्थ के बीच सूचना का मुक्त प्रवाह होना चाहिए जिससे अधीनस्थ निर्णय ले सकने में समर्थ हो सके और पूर्ण किए जाने वाले कार्य की प्रकृति की, प्राप्त अधिकार की प्रकृति व मात्रा के संदर्भ में सही व्याख्या कर सके।

8) **प्रभावी नियंत्रण का सिद्धांत** : प्रत्यायोजनकर्ता अपने अधिकार का प्रत्यायोजन करता है, अपने दायित्व का नहीं। अतः इस बात से उसे सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उसके द्वारा प्रत्यायोजित अधिकार उचित रूप से प्रयोग किया जा रहा है।

9) **पारितोषिक का सिद्धांत** : प्रभावी प्रत्यायोजन और प्राधिकार के उचित रूप से प्रयोग को पारितोषिक दिया जाना चाहिए। पारितोषिक की विवेकपूर्ण पद्धति अधीनस्थों द्वारा स्वेच्छापूर्वक दायित्व वहन करने और प्राधिकार स्वीकार करने के लिए प्रेरणा उत्पन्न करेगी और उपक्रम के भीतर एक स्वस्थ वातावरण भी बना सकेगी।

10) **ग्रहणशीलता का सिद्धांत** : अधिकारी तथा अधीनस्थ के बीच मेल मिलाप प्रत्यायोजन के लिए आवश्यक है तथा यह उनके बीच समझौते की स्थिति का सृजन भी करता है निर्णयन में कुछ विवेकाधिकार की आवश्यकता रहती है। इसका अर्थ यह है कि किन्हीं दो व्यक्तियों के दो निर्णय एक से नहीं हो सकते। अतः एक अधिकारी को, जो अधिकार का प्रत्यायोजन कर रहा है अपने अधीनस्थ के विचारों पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

12.2.4 प्रत्यायोजन का महत्व

संगठन की प्रक्रिया में अधिकारों का प्रत्यायोजन एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व है। संगठन में बहुत से कार्यों व भूमिकाओं का जाल सा बिछा रहता है। प्रत्यायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा विभिन्न व्यक्तियों के बीच उपक्रम में उनकी विभिन्न भूमिकाओं के संदर्भ में आपसी संबंध उत्पन्न होते हैं।

प्रत्यायोजन आवश्यक है, क्योंकि एक व्यक्ति के लिए बड़े उपक्रम के समस्त कार्यों की स्वयं के द्वारा देखरेख करना शारीरिक रूप से असम्भव है। प्रबंधक की सफलता अन्य व्यक्तियों के द्वारा अपने आप को द्विगुणित करने की योग्यता पर निर्भर करती है। आज के उपक्रम न केवल बड़े हैं, वरन् प्रकृति में जटिल भी हैं। कोई भी प्रबंधक विभिन्न प्रकृति के सभी कार्यों का निष्पादन करने के लिए सभी प्रकार की निपुणता व चतुराई नहीं रखता है। फिर, बड़े पैमाने की सभी व्यवसायिक कार्यवाहियाँ एक ही स्थान पर नहीं होती हैं। उनकी शाखाएँ व इकाइयाँ कई स्थानों पर हो सकती हैं। इन सभी शाखाओं का कुशल संचालन करने के लिए प्रत्यायोजन आवश्यक हो जाता है।

उपक्रम का कार्य निरंतर चलता है। प्रबंधक आते जाते रहते हैं किन्तु उपक्रम निरंतर चलते रहते हैं। इन उपक्रमों की कार्यवाहियों में प्रत्यायोजन अबाधता प्रदान करता है। एक उपक्रम के प्रबंधकीय विकास में भी प्रत्यायोजन की प्रक्रिया सहायक होती है।

अस्तु, प्रत्येक उपक्रम/संगठन के लिए प्रत्यायोजन महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रबंधक के भार को कम करता है और उपक्रम के महत्वपूर्ण मामलों की देखरेख करने के लिए उसको स्वतंत्रता प्रदान करता है। यह एक विधि है जिसके द्वारा अधीनस्थों का विकास किया जा सकता है तथा उन्हें उच्च–दायित्व के कार्य संभालने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है।

यह उपक्रम को निरंतरता प्रदान करता है तथा कर्मचारियों के बीच आपसी समझ उत्पन्न करने के लिए लाभदायक संगठनात्मक पर्यावरण उत्पन्न करता है।

बोध प्रश्न 2

1) कोष्ठक में दिए गए शब्दों से उपयुक्त शब्द चुन कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   i) परिणामों के आधार पर किया गया प्रत्यायोजन यह बतलाता है कि लक्ष्य उचित प्रकार से .... किए गए हैं। (सौंपे / सम्प्रेषित / विवेचित)

   ii) उत्तरदायित्व को न तो प्रत्यायोजित किया जा सकता है और न हटाया जा सकता है। यह तो .... होता है। (स्थायी / पूर्ण / अलोचपूर्ण)

   iii) अधीनस्थ प्रायः उत्तरदायित्व से .... के डर से बचना चाहते हैं। (दण्ड / गलतियों के कारण आलोचना / निकाले जाने)

   iv) अधीनस्थों को प्रत्यायोजन स्वीकार करने के लिए .... किया जाना चाहिए। (बाध्य / आदेशित / प्रशिक्षित)

   v) प्रबंधक प्रत्यायोजन करने के अनिच्छुक होते हैं जब उन्हें अपने अधीनस्थों की .... पर विश्वास नहीं रहता। (नैतिकता / उत्तरदायित्व की भावना / सत्यनिष्ठा)

2) निम्नलिखित कथनों में कौन सा सही है और कौन सा गलत ?

   i) प्रत्यायोजित का उत्तरदायित्व उसे सौंपे गए अधिकार से अधिक होता है।

   ii) अधीनस्थों से प्रबंधक की आयु कम होने पर प्रत्यायोजन संभव नहीं होता।

   iii) प्रत्यायोजन उपक्रम में आबाधता लाता है।

   iv) प्रत्यायोजन की प्रभावकता पर उद्देश्यों का कोई हाथ नहीं रहता।

   v) प्रभावी प्रत्यायोजन के लिए प्रबंधकों को अपने अधीनस्थों पर भरोसा होना चाहिए।

12.2.5 प्रभावी प्रत्यायोजन में रुकावटें

प्रत्यायोजन की समस्या मूलरूप से मानव नेतृत्व की है। प्रत्यायोजन न केवल प्रबंध की एक तकनीक है वरन् यह स्वयं व्यवसाय के व्यवहार का एक भाग है। अतः उपक्रम में उत्तरदायित्व को सौंपने तथा स्वीकार करने का वातावरण बनाना आवश्यक है। आपसी विश्वास तथा आस्था का वातावरण बनाए जाने पर ही यह संभव है। अधिकारी द्वारा सौंपने में अनिच्छा तथा अधीनस्थों द्वारा स्वीकार करने में आनाकानी अथवा टालमटोल प्रत्यायोजन की रुकावटें हैं जिन्हें यहाँ वर्णित किया जा रहा है।

प्रत्यायोजन के लिए प्रबंधक क्यों हिचकिचाते हैं ?

निम्न कारणों से प्रबंधक कभी–कभी प्रत्यायोजन करने में हिचकिचाते हैं?

1) **अधीनस्थों की योग्यता के बारे में उनके विश्वास में कमी** : एक प्रबंधक को अपने अधीनस्थों की योग्यता तथा क्षमता में विश्वास नहीं होता। वह यही सोचता है कि वह अपने अधीनस्थों की अपेक्षा कार्य का निष्पादन श्रेष्ठता से कर सकता है।

2) **उत्तरदायित्व संभालने की अधीनस्थ की योग्यता में शंका** : अधीनस्थ द्वारा उत्तरदायित्व संभालने की योग्यता में प्रबंधक द्वारा की जाने वाली शंका भी अन्य व्यक्तियों को अधिकार सौंपने में बाधक बन जाती हैं।

3) **शक्ति में कमी आने का भय** : प्रबंधक जो असुरक्षा अनुभव करते हैं और यह विचार करते रहते हैं कि यदि अधीनस्थ द्वारा किया गया कार्य अच्छा होगा तो उनके अधिकार छिन जाएँगे, प्रायः प्रत्यायोजन के लिए अनिच्छुक रहते हैं।

4) **आत्म विश्वास में कमी** : कुछ प्रबंधकों में आत्म विश्वास नहीं होता अथवा अपनी अयोग्यता के विषय में अत्यधिक सचेत रहते हैं, अतः वे अपने अधिकारों का प्रत्यायोजन करने में अनिच्छुक रहते हैं। पेशेवर प्रबंध की कमी पाई जाने वाले उपक्रमों में—ऐसा प्रायः देखने को मिलता है।

अधीनस्थ प्रत्यायोजन स्वीकार करने में क्यों हिचकिचाते हैं ?

निम्नलिखित परिस्थितियों में अधीनस्थ भी प्रत्यायोजन स्वीकार करने में हिचकिचाते हैं:

1) **उत्तरदायित्व स्वीकार करने में हिचकिचाहट** : शोध कार्यों से निष्कर्ष निकाला गया है कि अधिकांश अधीनस्थ नियंत्रण में कार्य करना पसंद करते हैं जिसमें न्यूनतम उत्तरदायित्व रहता है। ऐसे कर्मचारी उत्तरदायित्व स्वीकार करने में अनिच्छुक रहते हैं जो प्रत्यायोजन के साथ रहता है।

2) **आलोचना का भय** : एक दूसरा कारक जो अधीनस्थों को उत्तरदायित्व से दूर रहने के लिए प्रेरित करता है, अकुशलता अथवा गलतियों के कारण आलोचना किए जाने का भय है।

3) **साधनों की अपर्याप्तता का भय** : कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यक साधनों की अपर्याप्तता और प्रत्यायोजन के असहयोगी व्यवहार के कारण भी बहुत से अधीनस्थ उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करते।

4) **अभिप्रेरणा की कमी** : बहुत सी दशाओं में उपक्रम में प्रचलित वातावरण पर्याप्त मात्रा में अभिप्रेरक नहीं होता। यह अधिनस्थी द्वारा उत्तरदायित्व स्वीकार करने में रुकावट डालता है। भारत में किए गए कुछ अध्ययन यह बताते हैं कि प्रत्यायोजन, अधिकार पसंद है, उनमें अधीनस्थों के लिए आवश्यक सूचनाओं को छुपाने की प्रवृत्ति पाई जाती है तथा उनमें अधीनस्थों के प्रति विश्वास की कमी पाई जाती है। ये कुछ महत्वपूर्ण कारण हैं जिनसे अधीनस्थ प्रत्यायोजन कार्यों को स्वीकार करने में अनिच्छुक रहते हैं।

12.2.6 प्रभावी प्रत्यायोजन के उपाय

प्रत्यायोजन की प्रभावकता व्यवसाय के सामान्य व्यवहार से बहुत कुछ प्रभावित रहती है और यह बहुत सी बातों पर जैसे, प्रबंध—नीतियों, संगठनात्मक संस्कृति, पेशेवर दृष्टिकोण तथा प्रमुख प्रबंधकों के द्वारा प्रत्यायोजन करने की तत्परता अथवा सहयोगशीलता और अधीनस्थों को प्रत्यायोजन स्वीकार करने की योग्यता व इच्छा पर निर्भर करती है। अध्ययन कार्यों से यह स्पष्ट हो गया है। भद्दा अथवा असंगत प्रत्यायोजन, प्रत्यायोजन की कमी अथवा प्रत्यायोजन की असफलता का सबसे प्रमुख कारण है। प्रभावी प्रत्यायोजन के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं:

1) **संगठनात्मक वातावरण तथा सामान्य प्रबंध नीतियों में सुधार** : संगठनात्मक वातावरण कई कारणों पर निर्भर करता है, जिनमें सर्वप्रमुख कारण प्रमुख प्रबंधकों के सामान्य व्यवहार और उपक्रम की सम्पूर्ण कार्मिक नीतियाँ हैं। एक भविष्योन्मुख, प्रगतिशील उपक्रम अपने लोगों के विकास में विश्वास करता है और इसलिए युवक प्रबंधकों के विकास के लिए अधिक से अधिक अवसर जुटाता है।

2) **अधीनस्थों पर विश्वास** : यदि प्रमुख प्रबंधक विश्वास का वातावरण बना देते हैं और अपने अधीनस्थों में आस्था रखते हैं तो अधीनस्थ उत्तरदायित्व स्वीकार करने के लिए प्रेरित होंगे। एक बार आस्था/विश्वास के खिल जाने से भय की भावना दूर हो जाती है।

3) **स्पष्ट लक्ष्यों/उद्देश्यों की स्थापना** : उद्देश्यों की स्पष्टता से प्रभावी प्रत्यायोजन उत्पन्न होता है। प्रत्यायोजन स्वीकार करने वाले को स्पष्ट रूप से पता लग जाना चाहिए कि उसे क्या प्राप्त होना है।

4) **उत्तरदायित्व तथा प्राधिकार का स्पष्टीकरण** : प्रत्यायोजन स्वीकार करने वाले को कार्य निष्पादन हेतु प्राप्त अधिकारों के बारे में स्पष्ट ज्ञान हो जाना चाहिए। उत्तरदायित्वों के संदर्भ में अधिकारों की कमी का भी उसे पता चल जाना चाहिए।

5) **अधीनस्थों को अभिप्रेरित करना** : प्रत्यायोजन में अभिप्रेरणा, प्रेरक शक्ति है। चीनी दार्शनिक, लाओ–तुज ने श्रेष्ठ नेता के विषय में कहा था ''जब उनका कार्य पूर्ण हो जाता है, तो काम के पूरा होने पर लोग यह अनुभव करते हैं", हमने स्वयं यह कार्य किया है। लोग कैसे प्रेरित होंगे यह कहना कठिन है। उचित अभिप्रेरणा तो आंतरिक होती है। एक व्यक्ति किस कारण से अभिप्रेरित हुआ है यह ज्ञात करना सरल कार्य नहीं है। फिर भी अधिकारी को यह जानना आवश्यक है कि उसके अधीनस्थों की क्या आवश्यकताएँ अत्यधिक जरूरी हैं। शोध कार्यों से पता चला है कि समूह को सम्मानित करने अथवा समूह संसक्तिशीलता को बढ़ावा देने से भागीदारी प्रबंध प्रोत्साहित होता है। भागीदारी प्रबंध को उपक्रमों में सभी स्तरों पर सबसे नीचे के स्तर, मध्य और उच्चतम स्तरों पर प्रोत्साहन देना चाहिए।

6) **सम्प्रेषण में सुधार** : मेल–मिलाप एवं एक दूसरे को भली प्रकार समझने और संगठनात्मक वातावरण में सुधार लाने के लिए, सम्प्रेषण एक प्रभावक उपकरण है। नीतियों और उपक्रम के कार्यक्रमों से संबंधित सूचनाओं का मुक्त प्रवाह होना चाहिए।

7) **आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करना** : प्रत्यायोजन स्वीकार करने के लिए अधीनस्थों को तथा प्रबंधकों को प्रत्यायोजन करने के गुणों को प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

8) **पर्याप्त नियंत्रण स्थापित करना** : प्रबंधकों को रोजमर्रा के कार्यों से छुटकारा दिलाने के लिए, लेकिन वचनबद्धता बनाए रखने के लिए, नियंत्रणों की एक पद्धति का होना प्रभावी प्रत्यायोजन के लिए आवश्यक है।

12.3 विकेंद्रीकरण (Decentralisation)

अधिकार का प्रत्यायोजन अधिकार के केन्द्रीयकरण तथा विकेंद्रीकरण की विचारधारा से काफी निकट से सम्बन्धित है।

केन्द्रीकरण

एक प्रबंधक के द्वारा उपक्रम में प्राधिकार को अपने पास बनाए रखने को केन्द्रीकरण का नाम दिया गया है। हैनरी फैयौल के अनुसार ''प्रत्येक कार्य जो अधीनस्थ की भूमिका का महत्व बढ़ाने के लिए किया जाता है विकेंद्रीकरण कहलाता है और जो उसकी भूमिका को कम करने के लिए किया जाता है केन्द्रीकरण कहा जाता है।" थोड़े से अधिकार का

प्रत्यायोजन ही केन्द्रीकरण का नियम है। शक्ति तथा विवेकाधिकार कुछ अधिकारियों के हाथों में ही केद्रित रहते हैं। नियंत्रण एवं निर्णयन उच्चस्तरीय प्रबंध के प्राधिकार में रहते हैं। फिर भी, पूर्णरूपेण केन्द्रीकरण अयुक्ति–युक्त है क्योंकि इसका अर्थ होगा कि अधीनस्थों के पास कोई भी कर्त्तव्य, शक्ति अथवा अधिकार नही है।

केन्द्रीकरण छोटे उपक्रमों में आवश्यक हो सकता है क्योंकि अति प्रतियोगी दशाओं में इसके बिना उपक्रम जीवित नहीं रह सकते। किन्तु जैसे–जैसे उपक्रम जटिल होता जाता है, उसके प्रकार में वृद्धि होती है, कार्य–प्रवाह एक दूसरे पर निर्भर रहता है। कार्य जटिल होते जाते हैं, समूहों के बीच तथा आंतरिक स्थानिक भौतिक बाधाएँ उत्पन्न होती जाती हैं और कुशलता की ओर अग्रसर होने के लिए एक कार्यात्मक आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है जो कार्य संपादन स्तर पर निर्णय लेने की आवश्यकता को बलवती बनाती है। अस्तु, उपक्रम का आकार बड़ा होने पर विकेंद्रीकरण की आवश्यकता और अधिक हो जाती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि विकेंद्रीकरण अच्छा है और केन्द्रीकरण बुरा।

विकेन्द्रीकरण

विकेंद्रीकरण एक व्यवस्थित प्रयास है जिसमें कुछ प्राधिकारों को केद्रीय बिदुओं के लिए रखकर शेष को नीचे से नीचे के स्तर तक प्रत्यायोजन किया जाता है। इस क्रिया में निर्णय लेने के अधिकारों व शक्ति को उपक्रम के नीचे के स्तरों तक ढकेला जाता है। निर्णयन के केन्द्र समस्त उपक्रम के बीच बिखेर दिए जाते हैं। विकेंद्रीकरण का सार है उच्च स्तर से नीचे के स्तर तक अधिकार को सौंपना। जनतंत्रात्मक प्रबंध का यह मूलभूत सिद्धांत है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उसकी उपयोगिता एवं योगदान के लिए स्थान प्राप्त है।

जैसा कि आप जानते हैं विकेंद्रीकरण सहसंबंधित प्रत्यायोजन है। जब तक प्राधिकार का प्रत्यायोजन नहीं किया जाता, यह केन्द्रीकरण कहलाता है। पूर्णरूपेण केन्द्रीकरण अधीनस्थ प्रबंधकों की भूमिका का महत्व कम कर देता है, जो पुनः विकेंद्रीकरण को प्रोत्साहित करता है। पूर्णरूपेण विकेंद्रीकरण भी संभव नहीं है क्योंकि प्रबंधक अपने समस्त प्राधिकारों का प्रत्यायोजन नहीं कर सकते। यदि वे ऐसा करते हैं, तो उनका प्रबंधक का पद जाता रहेगा, और उनकी छुट्टी हो जाएगी। केन्द्रीकरण तथा विकेंद्रीकरण की मात्रा को चित्र 12.1 में दिखाया गया है।

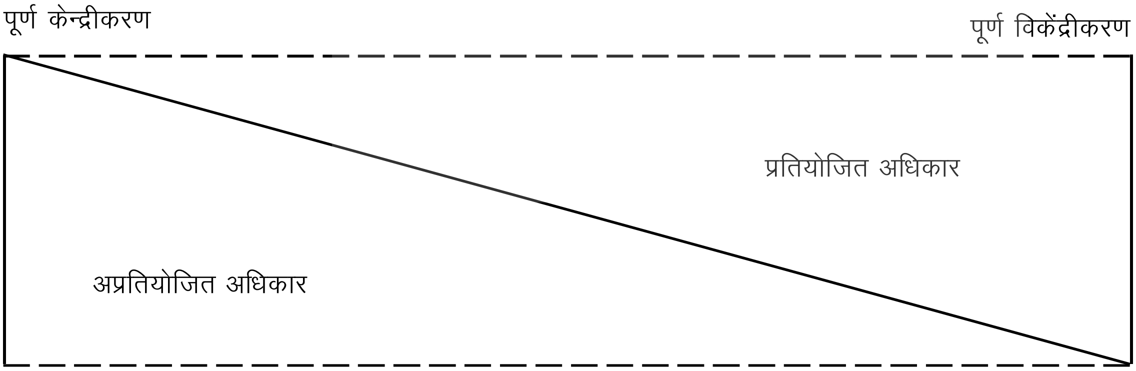

चित्र 12.1: केन्द्रीकरण और विकेंद्रीकरण की मात्रा

12.3.1 प्राधिकार के प्रत्यायोजन और विकेंद्रीकरण में अंतर

यद्यपि विकेंद्रीकरण का प्रत्यायोजन से समीप का संबंध है तथापि इन दोनों के बीच कुछ अंतर हैं जिनका वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

1) प्रत्यायोजन अधिकार हस्तांतरित करने की एक व्यवस्थित पद्धति है, जबकि विकेंद्रीकरण योजनाबद्ध प्रत्यायोजन का अंतिम परिणाम है।
2) प्रत्यायोजन में एक व्यक्ति से दूसरे को अधिकार का हस्तांतरण होता है, जबकि विकेंद्रीकरण में सम्पूर्ण उपक्रम के सभी केन्द्रों और इकाइयों में अधिकार का व्यवस्थित प्रत्यायोजन किया जाता है।
3) प्रत्यायोजन एक व्यक्ति से दूसरे के बीच हो सकता है और यह पूर्ण क्रिया भी हो सकती है, जबकि विकेंद्रीकरण पूर्ण तभी होता है जब उपक्रम में कार्यरत सभी अथवा अधिकांश, व्यक्तियों का पूर्णतः संभव प्रत्यायोजन किया जाता है।
4) प्रत्यायोजन अधिकारी तथा अधीनस्थ के बीच होता है, जबकि विकेंद्रीकरण सम्पूर्ण उपक्रम के लिए प्रत्यायोजन है जो उच्च प्रबंध स्तर और विभागी अथवा क्षेत्रीय के बीच होता है।
5) प्रभावी प्रबंध के लिए प्रत्यायोजन आवश्यक है क्योंकि कोई भी एक प्रबंधक सम्पूर्ण कार्यों की देख रेख अकेला नहीं कर सकता, किन्तु विकेंद्रीकरण ऐच्छिक है इसकी आवश्यकता उपक्रम के विकास से जुड़ी हुई है।
6) प्रत्यायोजन में क्रियात्मक नियंत्रण प्रत्यायोजन स्वीकार करने वाले के द्वारा किया जाता है, जबकि विकेंद्रीकरण में सम्पूर्ण नियंत्रण उच्च प्रबंध के हाथों में होता है।

12.3.2 विकेन्द्रीकरण के लाभ और सीमाएँ

केन्द्रीकरण तथा विकेंद्रीकरण प्रत्यायोजन के ही विस्तार हैं। पूर्ण विकेंद्रीकरण सदैव वांछनीय होता है, यह मान्यता भ्रामक है। इसी प्रकार पूर्ण केन्द्रीकरण अच्छा होता है, यह धारणा भी ठीक नहीं है। विकेंद्रीकरण के लाभ और सीमाओं का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

लाभ

1) **विकास की ओर अग्रसर तथा जटिल उपक्रमों के लिए सुविधाजनक** : अधिकारों का केन्द्रीकरण विशेष परिस्थितियों अथवा छोटे आकार वाली कम्पनियों के लिए विशिष्ट परिणामों की प्राप्ति के लिए वांछनीय हो सकता है। किन्तु जब उपक्रम आकार में विकसित होता है अथवा जटिल होता जाता है तो तानाशाह प्रबंधक भी कुछ अधिकारों का प्रत्यायोजन करने के लिए मजबूर हो जाता है और विकेंद्रीकरण की शुरुआत हो जाती है।
2) **अधिकारियों का भार कम करता है** : जब उपक्रम आकार में बढ़ता है और जटिल बनता जाता है तो विकेंद्रीकरण सदैव लाभदायक होता है। ऐसे समय में उच्च अधिकारियों के भार को कम करने की आवश्यकता होती है।
3) **विविधता को सुविधाजनक बनाता है** : व्यवसाय जब क्रियाओं की विविधताओं के कारण विकसित होता है अथवा विविध उत्पाद करने लगता है तो विकेद्रीकरण की आवश्यकता होती है।
4) **शीघ्र निर्णयन** : विकेंद्रीकरण कार्यबिंदु पर परामर्श करने तथा शीघ्र निर्णय लेने में सहायक होता है। यह विभिन्न कार्य अधिकारियों के बीच आपसी सम्पर्क स्थापित करता है तथा स्वयं के विकास तथा प्रशिक्षण के लिए अवसर प्रदान करता है और उन्हें सम्पूर्ण उपक्रम के विकास एवं विस्तार में अपने सर्वश्रेष्ठ प्रयास लगाने के लिए प्रेरणा देता है।

1) **विघटन को बढ़ावा देता है** : विकेंद्रीकरण की अति भी एक अभिशाप है। इससे ढिलाई आती है और अंत में उपक्रम में विघटन उत्पन्न होने लगता है। इससे उत्पादन की मात्रा के अनुपात में प्रतिकूल अर्थव्यवस्था शुरू हो जाती है और प्रत्येक विकेंद्रीकरण इकाई के उपरिव्ययों (overheads) में वृद्धि होने लगती है। कार्यों का दोहरापन कुल लागत में वृद्धि लाता है।

2) **विशिष्ट सेवाओं के क्षेत्र में उपयुक्त नहीं रहता** : विशिष्ट सेवाओं जैसे लेखाविधि, कार्मिक सेवाएँ, शोध व विकास आदि के क्षेत्रों में विकेंद्रीकरण अनुपयुक्त रहता है। फिर नियंत्रण व दायित्व के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों, जैसे उपक्रम के उद्देश्य दीर्घ अवधीय नीति–निर्धारण, पूँजी–विनियोग आदि में विकेंद्रीकरण उपयुक्त नहीं होता। इन क्षेत्रों पर केन्द्रीय नियंत्रण का होना उचित माना जाता है।

3) **मतभेद विवाद** : विकेंद्रीकरण विभागीय अध्यक्षों पर अधिक भार डालता है। उन्हें हर हालत में मुनाफा दिखाना होता है। इससे विभागीय अध्यक्ष अपने ही विभाग के विषय मैं सोचने को मजबूर हो जाते हैं। कभी–कभी उच्च प्रबंध मुनाफे में वृद्धि हेतु विभिन्न विभागों के बीच जानबूझ कर प्रतियोगिता को उकसाता है। यह प्रतियोगिता अन्तरविभागीय प्रतियोगिता में कटुता एवं मतभेद उत्पन्न करती है। अस्तु न तो अति केन्द्रीकरण ही और न ही अति विकेंद्रीकरण ही वांछनीय माना जाता है। आवश्यकता होती है स्वर्ण औसत (golden mean) की अर्थात् केन्द्रीकरण तथा विकेंद्रीकरण के बीच साम्य स्थापित करने की। प्रबंधकों के सामने प्रश्न यह नहीं है कि एक उपक्रम में कितना विकेंद्रीकरण हो, वरन प्रश्न यह है कि वहाँ कितना केन्द्रीकरण रहना चाहिए।

12.3.3 विकेद्रीकरण की मात्रा निर्धारित करने वाले कारक

उपक्रम के उद्देश्य को अधिक प्रभावी रूप में प्राप्त करने के लिए विकेंद्रीकरण सहायक होता है। विकेंद्रीकरण की मात्रा निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित कारक प्रायः विचारणीय रहते हैं :

1) **कार्यकलाप का आकार** : जैसे–जैसे एक उपक्रम आकार में बढ़ता है और जटिल होता जाता है, विकेंद्रीकरण की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। विभिन्न स्थानों पर निर्णय लिए जाते हैं और बड़ी संख्या में कार्यरत विभागों के कार्यों में समन्वयन करना कठिन हो जाता है। अस्तु, जैसे–जैसे आकार में वृद्धि होती है, विकेंद्रीकरण अनिवार्य हो जाता है।

2) **निर्णयन की लागत व जोखिमः** जैसे–जैसे उपक्रम आकार में बढ़ता है, भारी लागत वाले निर्णयनों में भी वृद्धि होती जाती है। अधिकार के विकेद्रीकरण होने पर उँची लागत व जोखिम वाले निर्णय उच्च प्राधिकारियों के लिए छोड़ दिए जाते हैं। और दैनिक (routine) निर्णय नीचे के स्तर पर लिए जाते हैं। इस प्रकार विकेंद्रीकरण निर्णयन प्रक्रिया में सहायक होता है तथा शीघ्रता भी प्रदान करता है।

3) **उच्च प्रबंध का दर्शन** : उच्च प्राधिकारियों का व्यवहार तथा उनका दर्शन भी अधिकार के विकेंद्रीकरण की मात्रा पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

4) **प्रबंधकीय साधनों की उपलब्धि** : प्रशिक्षित एवं योग्य प्रबंधकीय व्यक्तियों की उपलब्धि भी एक सीमा तक विकेंद्रीकरण की मात्रा पर प्रभाव डालता है।

5) **पर्यावरण का प्रभाव** : विकेंद्रीकरण की मात्रा को प्रभावित करने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण पर्यावरण शक्तियाँ कुछ इस प्रकार हैं–सरकारी नियंत्रण, कर–नीतियाँ और यूनियन बाजी (श्रमिकों तथा कर्मचारियों के संघ)। उदाहरण के लिए, जब एक उत्पाद की कीमतों पर नियंत्रण लगा दिया जाता है, तो विक्रय प्रबंधक की स्वतंत्रता में कमी आ जाती है। इसी प्रकार, श्रम कानून और श्रम–संघों के निर्णय प्रबंधक के अधिकारों को सीमित कर देते हैं।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित कथनों में कौन सा सही है और कौन सा गलत ?
   i) अधिकार का विकेंद्रीकरण और अधिकार का प्रत्यायोजन आपस में अत्यधिक संबंधित है।
   ii) प्रबंध के लिए विकेंद्रीकरण अनिवार्य है, किन्तु प्रत्यायोजन ऐच्छिक है।
   iii) बड़े आकार वाले उपक्रमों के लिए अधिकार का विकेंद्रीकरण अच्छा नहीं होता।
   iv) सभी परिस्थितियों में प्राधिकार का केन्द्रीकरण उचित नहीं होता।
   v) एक उपक्रम की सभी इकाइयों में प्रत्यायोजन संभव नहीं होता।
2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :
   i) विस्तृत परिप्रेक्ष्य में एक उपक्रम में नियोजित प्रत्यायोजन के लिए विकेंद्रीकरण ....होता है।
   ii) उपक्रम के .... होने पर केन्द्रीकरण वांछनीय होता है।
   iii) उत्पाद की विविधता के कारण जब व्यवसाय के विस्तार की आवश्यकता होती है तो उपक्रम में .... चाहिए।
   iv) व्यवसाय के .... में वृद्धि होने पर केन्द्रीकरण उपयुक्त नहीं माना जाता।
   v) लेखाविधि जैसी विशिष्ट सेवाओं के लिए ....उचित नहीं होता।

12.4 सारांश

कुछ निश्चित कार्यों को पूरा करने के लिए औपचारिक प्राधिकार सौंपना प्रत्यायोजन कहलाता है। प्रक्रिया के रूप में, प्रबंधक कार्य को अपने अधीनस्थों के बीच बाँट देते हैं उन्हें अपने कर्त्तव्य के एक भाग के रूप में यह कार्य पूरा करना होता है और इस कार्य को पूरा करने के लिए वे (प्रबंधक) आवश्यक प्राधिकार भी प्रदान करते हैं। प्रत्यायोजन में कर्त्तव्यों तथा दायित्वों को सौंपा जाता है, अधिकार प्रदान किए जाते हैं तथा जवाबदेही का सृजन किया जाता है।

प्रत्यायोजन साधनों का प्रभावी प्रयोग संभव बनाता है, उच्च अधिकारियों को अतिरिक्त कार्यभार से मुक्ति दिलाता है, निर्णय प्रक्रिया में सुधार लाता है तथा नेतृत्व एवं आत्मविकास को प्रेरित करता है।

वरिष्ठ अधिकारी प्रत्यायोजन करने के लिए प्रायः अनिच्छुक रहते हैं और अधीनस्थ उत्तरदायित्व स्वीकार करने से हिचकिचाते हैं। ये बातें प्रभावी प्रत्यायोजन के लिए बाधक बनती हैं। कुछ कारणों से प्रबंधक अधिकारों का प्रत्यायोजन करने के लिए अनिच्छुक हो

सकते हैं जैसेः अधीनस्थ की योग्यता अथवा उत्तरदायित्व निभाने के बारे में अविश्वास, शक्ति में कमी आने का भय अथवा आत्मविश्वास में कमी। अधीनस्थ भी प्रायः प्रत्यायोजन स्वीकार करने के अनिच्छुक रहते हैं। वे उत्तरदायित्व से बचना चाहते हैं, गलतियों अथवा अक्षमता के कारण आलोचना का भय बना रहता है, साधनों की अपर्याप्तता होने की संभावना रहती है और अभिप्रेरणा की कमी रहती है।

प्रभावी प्रत्यायोजन को संभव बनाने के लिए, संगठनात्मक पर्यावरण में सुधार लाना होगा, अधीनस्थों में विश्वास का वातावरण उत्पन्न करना होगा, अधिकार और दायित्व को सूक्ष्म रूप में परिभाषित करना होगा, अधीनस्थों को प्रत्यायोजन स्वीकार करने के लिए अभिप्रेरित करना होगा, सम्प्रेषण में सुधार और आवश्यक प्रशिक्षण देना होगा और पर्याप्त नियंत्रण स्थापित करने होंगे।

केन्द्रीकरण से आशय उपक्रम में प्रबंधकों द्वारा समस्त अधिकारों को अपने पास बनाए रखने से है। विस्तृत परिपेक्ष में उपक्रम की सभी इकाइयों के बीच अधिकार का व्यवस्थित रूप में प्रत्यायोजन विकेंद्रीकरण कहलाता है। उपक्रम में सभी स्तरों पर कार्यरत व्यक्तियों अथवा उनमें से अधिकांश व्यक्तियों के बीच पूर्ण रूपेण संभव प्रत्यायोजन करने पर ही विकेंद्रीकरण पूरा होता है।

विशिष्ट परिस्थितियों में विशिष्ट परिणामों की प्राप्ति हेतु अथवा कम्पनी का आकार छोटा होने पर अधिकारों का केन्द्रीकरण वांछनीय होता है। उपक्रम के आकार में वृद्धि होने अथवा उसकी जटिलता में वृद्धि होने तथा उच्च अधिकारियों के भार में कमी लाने के लिए विकेंद्रीकरण सदैव वांछनीय होता है।

विकेंद्रीकरण प्रत्यायोजन से समीप से संबंधित है। प्रत्यायोजन से ही विकेंद्रीकरण आता है। एक उपक्रम में विकेंद्रीकरण की मात्रा कई घटकों पर निर्भर करती है। जैसे उपक्रम का आकार, विकास की दर, उपक्रम की प्रकृति। प्रबंध दर्शन तथा वातावरण जिसमें उपक्रम कार्य करता है, से यह प्रभावित होता है। उपक्रम का आकार कुछ भी हो, पूर्ण विकेंद्रीकरण अथवा पूर्ण केन्द्रीकरण नाम की कोई बात नहीं है। न तो पूर्ण केन्द्रीकरण और न ही पूर्ण विकेंद्रीकरण वांछनीय है। आवश्यकता है उत्तम–औसत (golden mean) की और वह है इन दोनों के बीच सामंजस्य।

12.5 शब्दावली

उत्तरदायित्व की पूर्णता	:	ऐसा सिद्धांत जो यह बताता है कि उत्तरदायित्व न तो प्रत्यायोजित किया जा सकता है और न ही किसी दूसरे व्यक्ति पर डाला जा सकता है।
जवाबदेही	:	सौंपे गए कार्य को पूरा करने का अधीनस्थ का दायित्व।
आदेश की श्रृंखला	:	एक उपक्रम में अधिकारी–अधीनस्थ का संबंध जो ऊपर से नीचे अधिकार की श्रृंखला में चलता है।
केन्द्रीकरण	:	उपक्रम में एक अथवा कुछ केन्द्रों पर महत्वपूर्ण नीतियों के विषय में निर्णय लेने के प्राधिकार का व्यवस्थित एवं निरंतर आरक्षण।
विकेंद्रीकरण	:	प्राधिकार का व्यवस्थित रीति से प्रत्यायोजन जिससे उपक्रम के नीचे के स्तर पर कार्यरत व्यक्तियों को भी निर्णयन का अवसर प्राप्त होता है।

प्रत्यायोजन	:	विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए औपचारिक रूप से प्राधिकार एवं दायित्वों को अधीनस्थ को सौपने का कार्य।
प्राधिकार एवं दायित्व में समता	:	ऐसा सिद्धांत जिसके अनुसार सौंपे गए अधिकार प्रत्यायोजन स्वीकार करने वाले व्यक्ति के उत्तरदायित्व से कम न रहें बस समान रहे।
उत्तरदायित्व	:	एक निर्धारित कार्य को पूरा करने के लिए अधीनस्थ द्वारा अधिकारी के प्रति पूरा किया जाने वाला कर्तव्य भार।
आदेश की एकता	:	एक सिद्धांत जिसके अनुसार एक अधीनस्थ एक ही अधिकारी के प्रति उत्तरदायी रहता है।

12.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) 1) i) गलत, ii) गलत, iii) सही, iv) सही, v) गलत

   2) i) स्वामी–एजेंट, ii) अधिकार, iii) जवाबदेही, iv) पद, v) अधिकारी।

2) 1) i) सम्प्रेषित, ii) पूर्ण, iii) गलतियों के लिए आलोचना, iv) प्रशिक्षित v) उत्तरदायित्व की भावना।

   2) i) सही, ii) गलत, iii) सही, iv) गलत, v) सही।

3) 1) i) सही, ii) सही, iii) गलत, iv) गलत, v) गलत।

   2) i) अंतिम परिणाम, ii) छोटा, iii) विकेंद्रीकरण, iv) आकार, v) विकेंद्रीकरण।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

12.7 स्वपरख प्रश्न

1) प्रत्यायोजन की परिभाषा दीजिए। प्रत्यायोजन के तत्व क्या हैं?
2) अधिकार के प्रत्यायोजन के सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।
3) प्रभावी प्रत्यायोजन की क्या रुकावटें हैं? इनको किस प्रकार दूर किया जा सकता है?
4) प्रत्यायोजन और विकेंद्रीकरण में अन्तर स्पष्ट कीजिए?
5) केन्द्रीकरण और विकेंद्रीकरण शब्दावली का क्या अर्थ है? विकेंद्रीकरण के लाभ बतलाइए।
6) अति विकेंद्रीकरण भी उसी प्रकार बुरा है जैसे अति केन्द्रीकरण। व्याख्या कीजिए।
7) एक उपक्रम में अधिकार के विकेंद्रीकरण की मात्रा को निर्धारित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
8) प्राधिकार के प्रत्यायोजन का क्या महत्व है? यह प्राधिकार के विकेंद्रीकरण से किस प्रकार संबंधित है?

टिप्पणीः ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए, अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 13 नियंत्रण की प्रक्रिया (Process of Control)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 नियंत्रण की परिभाषा

13.3 नियंत्रण की विशेषताएँ

13.4 नियंत्रण का महत्व

13.5 नियंत्रण प्रक्रिया के विभिन्न चरण

13.6 प्रभावी नियंत्रण की शर्तें

13.7 नियंत्रण की सीमाएँ

13.8 नियंत्रण का क्षेत्र

13.9 नियंत्रण की परम्परावादी तकनीकें

- 13.9.1 बजटीय नियंत्रण
- 13.9.2 मानक लागत लेखांकन

13.10 आधुनिक तकनीकें

- 13.10.1 सम विच्छेद विश्लेषण
- 13.10.2 पर्ट (कार्यक्रम मूल्यांकन तथा पुनरीक्षण तकनीक)
- 13.10.3 सी.पी.एम. (क्रांतिक पथ पद्धति)
- 13.10.4 सांख्यिकी किस्म नियंत्रण
- 13.10.5 प्रबंध अंकेक्षण

13.11 सारांश

13.12 शब्दावली

13.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.14 स्वपरख प्रश्न

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- नियंत्रण की प्रक्रिया के स्वरूप और उसकी विशेषताओं को स्पष्ट कर सकें;
- प्रबंधन में नियंत्रण के महत्व को बता सकें;
- नियंत्रण की प्रक्रिया की अवस्थाओं को बता सकें और उनका विश्लेषण कर सकें;
- प्रभावी नियंत्रण की शर्तों को स्पष्ट कर सकें; और
- विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों के सबंध में बता सकें।

13.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आप प्रबंधन के योजना, संगठन, विभागीकरण तथा अधिकार संबंध के रूप एवं प्रत्यायोजन और विकेन्द्रीकरण के संबंध में विस्तारपूर्वक पढ़ चुके हैं। नियंत्रण प्रबंधन का एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। प्रबंधन कार्य के अध्ययन को तब तक पूरा

नहीं कहा जा सकता, जब तक कि इसके नियंत्रण कार्य का भी अध्ययन विस्तारपूर्वक नहीं किया जाता। इस इकाई में प्रबंधन के नियंत्रण कार्य के स्वरूप और महत्व के संबंध में चर्चा की जाएगी। नियंत्रण प्रक्रिया की अवस्थाओं का विश्लेषण किया जाएगा, विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों के संबंध में बताया जाएगा और प्रभावी नियंत्रण प्रणाली की शर्तों का स्पष्टीकरण किया जाएगा।

13.2 नियंत्रण की परिभाषा

नियंत्रण शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती हैः यह विश्लेषण करने की प्रक्रिया कि क्या योजनाबद्ध रूप में कार्य किए जा रहे हैं और यदि ऐसा नहीं हो रहा है तो योजना के अनुसार कार्य करने के लिए सुधारक उपाय किए जाएँ। नियंत्रण अच्छे प्रबंधन का अनिवार्य लक्षण है। इसका संबंध यह पता लगाने से होता है कि योजना, संगठन और निर्देशन के कार्यों के फलस्वरूप संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हो जाती है। नियंत्रण से गलत निर्णयों और उनके परिणामों को दूर किया जाता है तथा प्रभाविता एवं कुशलता को लाया जाता है। यह एक निरंतर प्रक्रिया है, जो प्रबंधक को इस अर्थ में सहायता करती है कि वह अपने अधीनस्थों से नियत मानक के अनुकूल कार्य ले सके। यदि कोई विचलन (deviation) होता है, तब वह उसके संबंध में शीघ्र पता लगाता है और भविष्य में ऐसा न हो, इसके लिए वह प्रभावी कदम उठाता है।

हेनरी फेयॉल के अनुसार नियंत्रण की परिभाषा इस प्रकार हैः "इससे यह पता लगता है कि जो कुछ हो रहा है, क्या वह स्वीकृत योजना, जारी किए गए आदेशों और स्थापित सिद्धांतों के अनुरूप है।"

प्रबंधन के नियंत्रण कार्य के अंतर्गत निम्नलिखित आते हैं– यह निर्धारित करना कि क्या किया जाना है अर्थात् मानक, क्या किया जा रहा है अर्थात् निष्पादन और यदि आवश्यक हुआ तो ऐसे सुधारक उपायों को काम में लाना जिससे योजना के अनुरूप ही निष्पादन हो सके अर्थात् वह मानक के अनुकूल हो।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि नियंत्रण के अंतर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं :

क) उचित तौर पर यह जानना कि मात्रा, कोटि और अवधि के संबंध में क्या करना है।

ख) यह पता लगाना कि क्या उपलब्ध साधनों के अनुसार, उपलब्ध अवधि में उचित लागत पर और कोटि के आवश्यक मानक के अनुरूप ही कार्य हुआ है या हो रहा है।

ग) योजनाबद्ध लक्ष्यों और मानकों में यदि कोई विचलन हुआ है तब उसके संबंध में विश्लेषण करना ताकि उसके कारणों का पता लग सके।

घ) विचलन को दूर करने के उपाय करना; और

च) यदि आवश्यक हुआ, तब योजनाओं और लक्ष्यों को संबोधित करना।

13.3 नियंत्रण की विशेषताएँ

नियंत्रण वह युक्ति (device) या कार्यविधि (procedure) है, जो प्रबंधक को उसके उत्तरदायित्व के अंतर्गत के कार्यों से अवगत रखती है और उसे विश्वास दिलाती है कि उसकी योजनाओं और नीतियों का पालन कार्यक्रम के अनुसार ही किया जा रहा है। नियंत्रण की निम्नलिखित विशेषताओं से नियंत्रण कार्य के स्वरूप को भली-भाँति समझा जा सकता है।

1) **नियंत्रण सर्वव्यापी कार्य है** : संगठन के सभी स्तरों पर नियंत्रण की आवश्यकता पड़ती है। अन्य प्रबंधन कार्यों की यह अनुवर्ती कार्यवाही है। प्रबंधकों का पद या कार्य का स्वरूप चाहे जो कुछ भी हो, परन्तु उनमें से प्रत्येक को नियंत्रण कार्य करना होता है। नियंत्रण योजना का अनिवार्य प्रतिरूप है। प्रबंधन की प्रक्रिया को नियंत्रण कार्य ही पूरा करता है।

2) **नियंत्रण सतत प्रक्रिया है** : नियंत्रण प्रबंध की एक प्रक्रिया एवं निरन्तर कार्य है। इसके अंतर्गत कार्य-निष्पादन की समीक्षा तथा कार्य-प्रणाली के मानकों के संशोधन संबंधी कार्य निरंतर रूप से चलते रहते हैं। जब तक कोई संगठन चलता है तब तक उसमें नियंत्रण कार्य भी चलते रहते हैं। बाह्य परिस्थितियों में किसी प्रकार के परिवर्तन का प्रभाव भी इस पर पड़ता है। अतः यह एक अत्यंत लचीली प्रक्रिया है।

3) **योजना नियंत्रण का आधार है** : नियंत्रण कार्य योजनाओं के संदर्भ में तथा उनके आधार पर ही हो सकता है। प्रभावी नियंत्रण तब तक संभव नहीं है जब तक कि प्रबंध संगठन के लक्ष्यों को स्पष्ट नहीं करता। सच्चाई तो यह है कि निष्पादन की माप के लिए कुछ मापदंडों की आवश्यकता पड़ती है, जो योजना के अंतर्गत निर्धारित होते हैं। योजना मार्ग का निर्धारण करती है और नियंत्रण का कार्य यह देखना होता है कि कार्य योजनाबद्ध ढंग से हो रहा है।

4) **कार्य योजना का मूल तत्व है** : नियंत्रण कार्योन्मुखी प्रक्रिया है। प्रबंधक किसी कार्य की शुरुआत करता है और उसी के द्वारा योजनाओं के क्षेत्र के अंतर्गत कार्यवाहियों का निर्देशन होता है। विचलन बार-बार न हो इसके लिए प्रबंधक को वर्तमान योजनाओं में हेरफेर या सुधार करना होता है।

5) **नियंत्रण भविष्य की ओर देखने वाली प्रक्रिया है** : नियंत्रण का लक्ष्य भविष्य होता है। हालाँकि अतीत का अनुभव भावी मानकों की कसौटी होता है, परन्तु नियंत्रण का संबंध वर्तमान कार्य-निष्पादन को नियंत्रित करने तथा भविष्य के लिए मार्गदर्शन की व्यवस्था करने के साथ होता है। अतः नियंत्रण भूत तथा भविष्य दोनों की ओर देखने की प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत भविष्य को भूतकाल की नज़र से देखा जाता है।

6) **प्रत्यायोजन नियंत्रण का आधार है** : नियंत्रण प्रभावपूर्वक हो सके, इसके लिए आवश्यक होता है कि अधिकार का प्रत्यायोजन किया जाए। प्रबंधक किसी कार्य पर सही ढंग से नियंत्रण तभी कर सकता है, जब उसे उपचारी कार्य करने का अधिकार हो तथा परिणाम का उत्तरदायी उसे ही बनाया जाएं।

7) **नियंत्रण के द्वारा संगठन में अनिश्चितता का सामना किया जा सकता है** : नियंत्रण से संगठन की अनिश्चित घटनाओं को विनियमित करने में सहायता मिलती है। कार्य की दिशा तथा उपभोक्ताओं की पसंद में किसी प्रकार के परिवर्तन का पूर्वाभ्यास इसके द्वारा होता है और इस प्रकार भविष्य की घटनाओं का सामना करने के लिए संगठन अपनी प्रक्रिया में हेरफेर कर लेता है।

13.4 नियंत्रण का महत्व

किसी व्यावसायिक संगठन के लिए नियंत्रण अत्यंत आवश्यक होता है। समुचित नियंत्रण संगठन की कार्यवाही को सरल बना देता है। नियंत्रण के अभाव में कर्मचारियों के कार्यों पर कोई प्रबंध नहीं रहता, अतः उसकी कार्यकुशलता में कमी आ जाती है। नियंत्रण की कुशल

प्रणाली के होने से संगठन में व्यवस्था और अनुशासन का वातावरण रहता है, जिससे कार्य के दोषपूर्ण होने या उसमें विलम्ब होने की संभावना न्यूनतम हो जाती है। नियंत्रण के निम्नलिखित प्रकार के लाभ के कारण इसका महत्व और भी बढ़ जाता है।

1) **कार्यवाही में समंजन (Adjustment in operation)** : नियंत्रण प्रणाली संगठन की कार्यवाहियों के समंजन की विधि का कार्य करती है। अनेक उद्देश्य नियंत्रण के आधार का काम करते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति नियंत्रण कार्यों के ही द्वारा होती है। नियंत्रण के द्वारा ही यह जाना जा सकता है कि योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं या नहीं तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा में प्रगति हो रही है या नहीं। इस सिलसिले में यदि किसी प्रकार विचलन हो रहा है तो उसका उपचार नियंत्रण से ही संभव हो पाता है।

2) **प्रबंधकीय उत्तरदायित्व (Managerial responsibility)** : प्रत्येक संगठन में प्रबंधकीय उत्तरदायित्व का सृजन अनेक व्यक्तियों के जिम्मे कार्यों को सौंप कर किया जाता है। इस प्रक्रिया का प्रारंभ शीर्षस्थ स्तर पर होता है और फिर वह निचले स्तर तक जाती है। कोई प्रबंधक अपने अधीनस्थ व्यक्तियों को कार्यों को करने को देता तो है फिर भी कार्य का उत्तरदायित्व स्वयं उसी के ऊपर रहता है। यह स्वाभाविक ही है कि जब वह अपने अधीनस्थ व्यक्तियों के कार्यों के प्रति उत्तरदायी है, तब उनके ऊपर उसका नियंत्रण भी होना चाहिए। इस प्रकार, नियंत्रण के द्वारा प्रबंधक अपने उत्तरदायित्वों को पूरा कर लेता है।

3) **मनोवैज्ञानिक प्रभाव (Psychological effect)** : नियंत्रण की प्रक्रिया से व्यक्तियों को और अच्छी तरह से कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। व्यक्तियों के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन उनके निर्धारित लक्ष्यों के आधार पर किया जाता है। व्यक्ति को जब मालूम होता है कि उसके कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन योजनाबद्ध लक्ष्यों के आधार पर होगा, तब वह योजना के अनुसार कार्य करेगा। इस प्रकार वह अपने लिए निर्धारित मानकों के अनुसार ही कार्य करने लगता है, विशेषतः उस स्थिति में जब कि निष्पादन के आधार पर उसके लिए पुरस्कार या दंड का प्रावधान रहता है। चूंकि निष्पादन मापदंड इस प्रक्रिया के प्रमुख तत्वों में से एक होता है, अतः संगठन का प्रत्येक व्यक्ति अधिकतम योगदान करने लगता है।

4) **कार्य के दौरान समन्वय (Coordination in action)** : यद्यपि समन्वय प्रबंध का सार है और इसकी प्राप्ति सभी प्रबंधकीय कार्यों को सही ढंग से करने से होती है, फिर भी इस पक्ष पर नियंत्रण को अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। नियंत्रणों की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि इनका केन्द्र बिन्दु केवल प्रबंधक के कार्य करने का उत्तरदायित्व ही नहीं बल्कि उसका अंतिम उत्तरदायित्व भी होता है। इस प्रकार, प्रबंधक को अपने अधीनस्थों के कार्यों का समन्वय इस प्रकार करने को मजबूर होना पड़ता है कि उद्देश्य की प्राप्ति में प्रत्येक व्यक्ति का योगदान बना रहे। चूँकि संगठन के सभी स्तरों पर ऐसा ही होता है अतः समस्त संगठन में समन्वय का कार्य सम्पन्न हो जाता है।

5) **संगठनात्मक कुशलता और प्रभाविता (Organisational efficiency and effectiveness)** : यदि नियंत्रण कार्य भली-भाँति किया जाए तो संगठन के कार्यों में कुशलता और प्रभाविता आती है। नियंत्रण प्रबंधकों को अधिक ज़िम्मेदार बनाता है। उन्हें बेहतर कार्य करने को प्रेरित करता है तथा उनके कार्यों के बीच समन्वय स्थापित करता है। इस प्रकार संगठन में कार्य-कुशलता बढ़ती है। जहाँ तक प्रभाविता का प्रश्न है, यदि कोई संगठन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर पाता है, तब उसे प्रभावी माना जाता है। चूंकि नियंत्रण का ध्यान संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने पर रहता है, अतः संगठन प्रभावी बन ही जाता है।

13.5 नियंत्रण प्रक्रिया के विभिन्न चरण

योजनाओं के साथ उनके वास्तविक कार्य-निष्पादन की तुलना करने और सुधारक कार्यवाहियों की शुरुआत करने की प्रक्रिया के संबंध में नियंत्रण अंतिम चरण होता है। प्रमुख नियंत्रण चाहे जहाँ भी हो, और वह जिसे भी नियंत्रित करता हो, उसमें निम्नलिखित चरण होते हैं :

1) **मानक निर्धारण (Setting standards)** : व्यवसाय के समस्त कार्यभार को विभागों, अनुभागों तथा व्यक्तियों के बीच बाँट दिया जाता है। इनमें से प्रत्येक के लिए कुछ निश्चित उद्देश्य तय कर दिए जाते हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए उन्हें व्यापक रूप से कार्य करने होते हैं। इन उद्देश्यों का निर्धारण भौतिक रूप में किया जाता है, जैसे कि उत्पादों की मात्रा, सेवा की इकाइयाँ, श्रम घंटे, अस्वीकरण की गति या मात्रा अथवा इनकी अभिव्यक्ति मुद्रा रूप में की जा सकती है जैसे कि बिक्री, लागत, पूँजी-व्यय या लाभ की मात्रा या किसी अन्य सत्यापनीय कोटि के रूप में भी की जा सकती है। इन मानकों का स्पष्ट होना आवश्यक होता है जिससे कि कार्य-निष्पादन की जांच-पड़ताल करना संभव हो सके। इसके साथ ही साथ यह भी आवश्यक होता है कि संगठन के कुछ विशेष व्यक्तियों को कार्यों के प्रति उत्तरदायी माना जाए ताकि कार्य निष्पादन यदि निर्धारित मानक से भिन्न हो, तो उसके लिए उन्हें ही उत्तरदायी माना जाए। मानक की चर्चा मा-उ-ल-प्र की श्रृंखलाओं में की जा सकती है। मानक संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति का मापदंड है। इन उद्देश्यों का लक्ष्य होता है संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करना जो किसी भी संगठन के अंतिम प्रयोजन होते हैं।

   मानक (standard) - उद्देश्य (objectives) - लक्ष्य (goals) - प्रयोजन (purpose)

   जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, मानकों का प्रयोग उद्देश्यों के नियंत्रण के लिए उद्देश्यों का प्रयोग लक्ष्यों के नियंत्रण के लिए और लक्ष्यों का प्रयोग प्रयोजन के नियंत्रण के लिए किया जाता है।

2) **कार्य-निष्पादन का माप (Measurement of performance)** : दूसरा चरण है मानकों के प्रकाश में अनेक व्यक्तियों, वर्गों या इकाइयों के वास्तविक कार्य-निष्पादन को मापना। प्रबंधकों को यह नहीं मान लेना चाहिए कि मानकों के अनुरूप कार्य हो रहा है। उन्हें चाहिए कि कार्य-निष्पादन का माप करें तथा मापदंड के साथ इसकी तुलना करें। मात्रात्मक माप उस स्थिति में किया जाता है, जब मानकों का निर्धारण संख्यात्मक रूप में होता है। इससे मूल्य निर्धारण कार्य आसान और सरल हो जाता है। अन्य सभी स्थितियों में कार्य-निष्पादन का माप गुणात्मक कारकों के रूप में किया जाता है।

   उदाहरणार्थ, औद्योगिक संबंध प्रबंधक (Industrial Relation Manager) के कार्य-निष्पादन का माप श्रमिकों की प्रवृत्ति, हड़तालों की आवृत्ति तथा श्रमिकों के मनोबल से किया जा सकता है। श्रमिकों की प्रवृत्ति, और उनके मनोबल को मात्रात्मक रूप में नहीं मापा जा सकता। इनको तो गुणात्मकता के आधार पर ही मापा जाता है। यदि मानक का निर्धारण समुचित रूप से किया जाता है और यदि यह जानने के लिए साधन उपलब्ध हैं कि अधीनस्थ कर्मचारी क्या कर रहे हैं, तब वास्तविक या प्रत्याशित कार्य-निष्पादन के मूल्यांकन का कार्य आसान हो जाता है।

3) **मानकों के साथ कार्य-निष्पादन की तुलना करना और यदि अंतर हैं तो उनका पता लगाना** : कार्य-निष्पादन की माप करने के साथ ही प्रबंधक का उत्तरदायित्व समाप्त

नहीं हो जाता। मानक में यदि कोई विचलन होता है तो उसे देखकर उसके कारणों का पता लगाना चाहिए। मानक के साथ कार्य-निष्पादन की तुलना करना और विचलन के कारणों का पता लगाना नियंत्रण का तीसरा चरण होता है। जिन कारणों से विचलन होते हैं, वे इस प्रकार हो सकते हैंः दोषयुक्त माल, मशीनें, प्रक्रियाएँ, प्रयासों में ढील आदि। तुलनात्मक विश्लेषण कार्य-निष्पादन के यथासंभव समीप ही करना चाहिए। इससे दोषों को पता लगाने और न्यूनतम क्षतियों के साथ सुधार लाने में सहायता मिलती है।

4) **सुधारक उपायों को अपनाना (Adopting corrective measures)** : नियंत्रण प्रक्रिया का अंतिम चरण है सुधारक उपायों को काम में लाना जिससे विचलन फिर न होने पाए तथा संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हो जाए। इस कार्य के लिए प्रबंधकों के लिए आवश्यक होता है कि वे तत्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने या वर्तमान लक्ष्य या मानकों को संशोधित करने.या श्रमिकों के चयन और प्रशिक्षण की विधियों को बदलने या योजनाओं को संशोधित रूप देने के संबंध में समुचित निर्णय लें।

नियंत्रण प्रक्रिया के उपर्युक्त चरणों को चित्र 13.1 और 13.2 में दिखाया गया है।

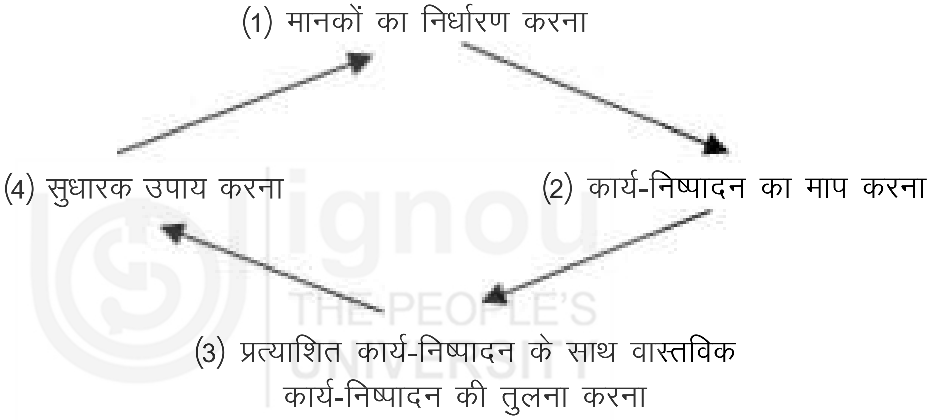
(1) मानकों का निर्धारण करना
(2) कार्य-निष्पादन का माप करना
(3) प्रत्याशित कार्य-निष्पादन के साथ वास्तविक कार्य-निष्पादन की तुलना करना
(4) सुधारक उपाय करना

चित्र 13.1 : नियंत्रण प्रक्रिया

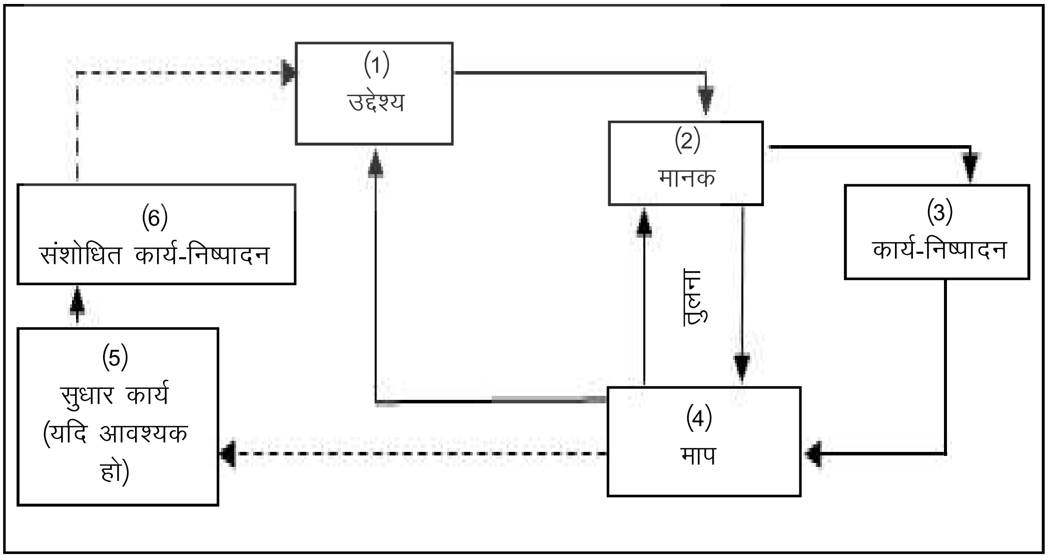
(1) उद्देश्य
(2) मानक
(3) कार्य-निष्पादन
(4) माप
(5) सुधार कार्य (यदि आवश्यक हो)
(6) संशोधित कार्य-निष्पादन
तुलना

चित्र 13.2 : नियंत्रण प्रक्रिया

बोध प्रश्न 1

1) प्रबंधन कार्य के रूप में 'नियंत्रण' शब्द की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत।

   i) नियंत्रण प्रबंधक को उसके उत्तरदायित्वों से मुक्त कर देता है।

   ii) नियंत्रण तभी आवश्यक होता है, जब मानक से कार्य-निष्पादन का विचलन होता है।

   iii) संगठन के कार्यों में कुशलता लाने में नियंत्रण सहायक होता है।

   iv) नियंत्रण का मुख्य कार्य है लोगों को दंडित करना और कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए कर्मचारियों पर दबाव डालना।

   v) प्रबंधन के सभी स्तरों के लिए नियंत्रण की प्रक्रिया संगत होती है।

3) नियंत्रण प्रक्रिया में क्या-क्या कार्य होते हैं, बताइए।

   i) ....

   ii) ....

   iii) ....

   iv) ....

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

13.6 प्रभावी नियंत्रण की शर्तें (Requisites of Effective Control)

नियंत्रण की प्रणाली प्रभावी हो तथा अपने उद्देश्य को पूरा कर सके, इसके लिए उसे कुछ शर्तों को पूरा करना होता है। इन्हें प्रभावी नियंत्रण की पूर्व शर्त कहा जा सकता है।

प्रभावी नियंत्रण प्रणाली की शर्तें (requisites) निम्नलिखित होती हैं :

1) **उद्देश्यों का स्पष्टीकरण** : नियंत्रण प्रणाली की योजना बनाने के पूर्व संगठन के उद्देश्यों को स्पष्ट करना आवश्यक होता है। नियंत्रण की प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि योजना से संभावित या वास्तविक विचलन में सुधार लाने वाली कार्यवाहियाँ समय से की जा सकें।

2) **नियंत्रण तकनीकों की कुशलता** : उन नियंत्रण तकनीकों को कुशल माना जाता है, जो योजनाओं से होने वाले विचलन का पता लगाकर न्यूनतम प्रतिकूल परिणामों के साथ समय पर ही उनमें सुधार लाने वाली कार्यवाहियों की व्यवस्था कर देती हैं।

3) **नियंत्रण का उत्तरदायित्व** : नियंत्रण करने का प्रमुख उत्तरदायित्व उस प्रबंधक का होना चाहिए जिसे योजना को कार्यान्वित करना है।

4) **प्रत्यक्ष नियंत्रण** : नियंत्रण की प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए कि नियंत्रक और नियंत्रित के बीच सीधा संपर्क बना रहे।

5) **संगठन की उपयुक्तता** : नियंत्रण संगठन के उपयुक्त होना चाहिए। वर्तमान कार्य-निष्पादन संबंधी सूचना प्रवाह को संगठन की संरचना के अनुरूप होना चाहिए। यदि वरिष्ठ अधिकारी को समस्त कार्यवाहियों का नियंत्रण करना है, तब उसके लिए ऐसी विधि को अपनाना आवश्यक हो जाता है जिसकी सहायता से वह प्रत्येक कार्यवाही पर नियंत्रण कर सके।

6) **लचीलापन** : किसी अच्छी नियंत्रण प्रणाली को व्यवसाय के गतिशील विश्व के स्वरूप में निरंतर होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप चलना चाहिए। इसे उन नई गतिविधियों के अनुरूप बनने योग्य होना चाहिए जिनके अंतर्गत स्वयं नियंत्रण प्रणाली की असफलता भी आ जाती है। योजनाओं को ऐसी स्वचालित पद्धति की आवश्यकता पड़ सकती है, जिसे आपातकाल में कार्य करने वाली मानव पद्धति से समर्थन मिलता है और उसी प्रकार स्वचालित पद्धति से मानव पद्धति को समर्थन मिलता है।

7) **आत्मसंयम** : इकाइयाँ इस प्रकार बनाई जा सकती हैं कि स्वयं उनका भी नियंत्रण होता रहे। यदि किसी विभाग के पास अपना लक्ष्य तथा नियंत्रण प्रणाली है, तब नियंत्रण संबंधी अधिकतर कार्य विभाग के अंतर्गत ही हो जाएंगे। उसके बाद आत्मसंयम की इन उप-पद्धतियों को समस्त नियंत्रण प्रणाली के साथ जोड़ा जा सकता है।

8) **महत्वपूर्ण स्थानों का नियंत्रण** : महत्वपूर्ण, प्रमुख और सीमा निर्धारक स्थानों का पता लगाकर यदि उनको अनुकूल बनाने के संबंध में ध्यान दिया जाए तो नियंत्रण कार्य प्रभावशाली और कुशलतापूर्वक हो सकेगा। इसे "अपवाद द्वारा नियंत्रण' (control by exception) कहा जाता है। इसे ऐसा कहने का कारण यह है कि इस सिद्धांत के अनुसार, मानक से होने वाले धनात्मक या ऋणात्मक प्रकार के केवल महत्वपूर्ण विचलनों के संबंध में ही प्रबंधन को ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि ये तो मात्र अपवाद के रूप में होते हैं। सभी प्रकार के विचलनों के संबंध में ध्यान देने के प्रयास बेकार के प्रयासों को और भी बढ़ाते हैं और महत्वपूर्ण समस्याओं की ओर से ध्यान हटा लेते हैं।

9) **सुधारक कार्य** : नियंत्रण प्रणाली के अंतर्गत विचलनों के संबंध में पता लगाना ही पर्याप्त नहीं होता। समय रहते सुधारक कार्यवाहियों को करना होता है। जिससे मानक से होने वाले विचलनों को समुचित योजना, संगठनात्मक कार्यों तथा निर्देश के द्वारा रोका जा सके।

10) **भविष्य की ओर देखने वाला नियंत्रण** : नियंत्रण प्रणाली को भविष्य उन्मुखी होना चाहिए। योजना से यदि कोई विचलन हो रहा हो तो उसके संबंध में इसे शीघ्र ही बताना चाहिए जिससे भविष्य को सुरक्षित बनाया जा सके। यदि नियंत्रण संबंधी विवरणों का भविष्य के साथ संबंध नहीं होता, तब इनका कोई उपयोग नहीं क्योंकि ये ऐसे उपायों को बताने में असमर्थ होते हैं, जिनसे भूतकाल में हुए विचलनों में सुधार लाया जा सके।

11) **मानवीय कारक** : किसी अच्छी नियंत्रण प्रणाली को कार्यकेन्द्रित (work centred) न होकर श्रमिक केन्द्रित (labour centred) होना चाहिए क्योंकि नियंत्रण तो उन श्रमिकों पर किया जाता है जो कार्य करते हैं। जब भी विचलन काफी मात्रा में हो रहा हो तो पता लगाना चाहिए कि इसके लिए कौन-कौन उत्तरदायी हैं और फिर उन्हें समुचित निर्देश देना चाहिए। इस प्रकार नियंत्रण के दौरान मानवीय कारकों के संबंध में उचित ध्यान दिया जाना चाहिए। तकनीकी रूप से अच्छी तरह से बनाई गई नियंत्रण प्रणाली भी असफल हो सकती है क्योंकि लोगों की प्रतिक्रिया प्रणाली के विपरीत हो सकती है।

12) **किफायती** : नियंत्रण की प्रणाली को अपने ऊपर होने वाले व्यय के संबंध में ध्यान देना चाहिए। यह आवश्यक है कि इससे जितनी बचत होने का अनुमान लगाया जाता है वह उस पर होने वाले प्रत्याशित व्यय से अधिक हो। छोटे पैमाने की उत्पादन इकाइयों में विस्तृत और खर्चीली नियंत्रण प्रणालियों का प्रयोग करना संभव नहीं हो पाता।

13) **वस्तुपरक मानक** : जहाँ तक संभव हो, मानकों को वस्तुपरक (objective) होना चाहिए। यदि ये व्यक्तिपरक होंगे तो कार्य-निष्पादन के संबंध में निर्णय पर किसी प्रबंधक या अधीनस्थ व्यक्ति के व्यक्तित्व का गलत प्रभाव पड़ सकता है। प्रभावी नियंत्रण के लिए वस्तुपरक, सही और उचित मानक आवश्यक होते हैं। वस्तुपरक मानक मात्रात्मक हो सकते हैं या गुणात्मक। परन्तु इन दोनों ही स्थितियों में मानकों के लिए तथ्य के आधार पर निर्धारण और सत्यापन के योग्य होना आवश्यक होता है। यद्यपि यह स्पष्ट किया गया है कि उपर्युक्त शर्तों के साथ ''नियंत्रण कार्य'' किस प्रकार से प्रभावी हो सकता है फिर भी नियंत्रण की कुछ सीमाएँ भी हैं। नीचे इन, नियंत्रण की सीमाओं के संबंध में विचार किया जाएगा।

13.7 नियंत्रण की सीमाएँ

1) **बाह्य कारकों पर नियंत्रण नहीं** : नियंत्रण से अभिप्राय केवल उन्हीं कारकों के संबंध में होता है, जो किसी उद्यम के लिए आंतरिक होते हैं। लेकिन कुछ कारक तो बाह्य भी होते हैं। जैसे कि सरकारी कार्यवाही, बाजार स्थितियों में परिवर्तन, नई तकनीकों तथा उत्पादन की सामग्री की खोज और आविष्कार, नवीन प्रक्रियाएँ आदि जिन पर प्रबंधन का कोई नियंत्रण नहीं होता। इस प्रकार, हम देखते हैं कि परिवर्तनशील बाह्य कारकों के सम्मुख नियंत्रण का कोई प्रभाव नहीं हो पाता।

2) **संतोषजनक मानकों की आवश्यकता** : संतोषजनक मानक नियंत्रण कार्य में सहायक होते हैं। लेकिन ऐसे अनेक क्षेत्र और क्रियाएँ हैं जिनके कार्य-निष्पादन का स्वरूप अगोचर होता है और सही ढंग से उनका माप संभव नहीं हो पाता। इनके लिए संतोषजनक मानकों का निर्धारण नहीं किया जा सकता अर्थात् प्रबंधन विकास, मानव संबंध, जन-संपर्क, कर्मचारियों की राय, श्रमिकों की निष्ठा तथा इस प्रकार के अन्य मानवीय व्यवहारों के परिणाम।

3) **अपूर्णताओं की माप** : अगोचर कार्य-निष्पादन के कारण मानकों के निर्धारण में कठिनाइयाँ आती हैं। इसके परिणामों को मात्रात्मक और गुणात्मक रूप में मापने का कार्य जटिल भी होता है। इसीलिए इसे प्रबंधकों के निर्णय और व्याख्या पर छोड़ना होता है जिसे सही-सही माप नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त अलाभकर व्यय (uneconomic expenditure) वाले दिन-प्रतिदिन के कार्यों के परिणामों का सही ढंग से मूल्यांकन तथा माप मितव्ययिता के आधार पर नहीं किया जा सकता।

4) **सुधारक कार्यों की सीमाएँ** : यदि सभी प्रकार की त्रुटियों और विचलनों को समय पर सुधार लिया जाए तो व्यवसाय को सुचारू रूप से चलाया जा सकता है। यदि ऐसा होता है तब क्षति नहीं होने पाएगी। नियंत्रण कार्य यह मानकर किया जाता है कि व्यक्तिगत उत्तरदायित्व निश्चित है और संबंधित व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह सुधारक और उपचारी कार्य करेगा। अनेक प्रकार के विचलनों के होने को असामान्य नहीं माना जाता, परन्तु इनके लिए किसी विशेष व्यक्ति को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। ऐसी स्थितियों में नियंत्रण अप्रभावी सिद्ध होता है।

5) **नियंत्रण के विपरीत प्रतिक्रिया** : जिन अधीनस्थ कर्मचारियों पर नियंत्रण किया जाता है, वे उसे कदापि नहीं चाहते। नियंत्रण से उनकी स्वतंत्रता का हनन होता है एवं उनके व्यक्तिगत चिंतन और पहल में बाधा आती है। इसी कारण अधीनस्थ कर्मचारी इनका विरोध करते हैं तथा उनकी प्रतिक्रिया इनके विपरीत होती है।

6) **प्रयोग में व्यावहारिक कठिनाइयाँ** : नियंत्रण के अंतर्गत विचलनों का विश्लेषण करना होता है, जिससे उनके कारणों को जाना जा सके। परन्तु इस प्रकार के विश्लेषणात्मक कार्य में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। सबसे पहली बात है बहुत बड़ी मात्रा में व्यय का होना। दूसरी बात है कुशल और अनुभवी कर्मचारियों की आवश्यकता, जो स्थिति से निपट सकें। और तीसरी बात यह है कि सुधार और विचलनों में कुछ समय लगता है, अतः कभी-कभी तो काम को ही बंद कर देना पड़ता है। इसके फलस्वरूप, उपक्रम को अत्याधिक क्षति उठानी पड़ सकती है।

13.8 नियंत्रण का क्षेत्र (Control Areas)

नियंत्रण प्रभावशाली हो इसके लिए आवश्यक है कि उन क्षेत्रों को चुना जाए जिनमें नियंत्रण करना है। इन क्षेत्रों का पता लगाने से अनेक लाभ होते हैं और इस प्रकार प्रबंधन निम्नलिखित कार्य कर पाता है।

i) अधिकार का प्रत्यायोजन और उत्तरदायित्व को निश्चित करना;

ii) प्रत्येक कार्य के पर्यवेक्षण के भार को कम करना; और

iii) संतोषजनक परिणाम के लिए साधनों की प्राप्ति।

वास्तव में, नियंत्रण की उन सभी क्षेत्रों में आवश्यकता पड़ती है, जिनमें संगठन के अस्तित्व और सफलता के ऊपर कार्य-निष्पादन और परिणामों का प्रत्यक्ष और आवश्यक रूप से प्रभाव पड़ता है। इन क्षेत्रों के संबंध में विशेष रूप से चर्चा करना आवश्यक है। इस संबंध में पिटर ड्रकर ने उन आठ प्रमुख परिणाम क्षेत्रों का जिक्र किया है जिनमें उद्देश्यों का निर्धारण और नियंत्रणों का प्रयोग किया जाना चाहिए। ये क्षेत्र निम्नलिखित हैं :

1) बाज़ार स्थिति

2) नवीन प्रक्रिया

3) उत्पादिता

4) भौतिक संसाधन

5) वित्तीय संसाधन

6) लाभप्रदता

7) प्रबंधक का कार्य-निष्पादन और उसकी अभिवृत्ति

8) सार्वजनिक उत्तरदायित्व।

प्रमुख क्षेत्रों की पहचान करने के अतिरिक्त अपने स्वरूप और प्रयोजन के आधार पर भी नियंत्रण भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। इनके संबंध में एक-एक करके चर्चा की जाएगी।

1) **भौतिक तथा वित्तीय नियंत्रण** : भौतिक नियंत्रणों से अभिप्राय संपत्तियों और परिसम्पत्तियों, सामग्रियों, स्टोरों और अतिरिक्त पुर्जों के स्टॉकों तथा मात्रात्मक और गुणात्मक रूप में काम में आने वाली अन्य प्रकार की वस्तुओं की सुरक्षा और रख-रखाव से होता है। वित्तीय नियंत्रण के अंतर्गत आता है नकद रूप में प्राप्तियों और भुगतानों, स्थायी और कार्यशील पूँजी (fixed and working capital), आय और व्यय, लाभ तथा परिसम्पत्तियों और देयताओं के मूल्य के ऊपर नियंत्रण।

2) **वास्तविक और प्रत्याशित निष्पादन पर नियंत्रण** : लघुकालिक उद्देश्यों, लक्ष्यों, मानकों और सतत ध्येयों की प्राप्ति के लिए दिन-प्रतिदिन की कार्यवाहियों पर नियंत्रण करना आवश्यक होता है। यह नियंत्रण की एक दूसरी श्रेणी है।

3) **नीतियों और कार्यविधियों पर नियंत्रण** : नीतियों का निरुपण और कार्यविधियों का निर्धारण इसलिए किया जाता है कि संगठन के कर्मचारियों के व्यवहार और कार्य पर नियंत्रण रखा जा सके। इनका नियंत्रण प्रायः शीर्षस्थ प्रबंधकों द्वारा बनाई गई नियम पुस्तिकाओं द्वारा किया जाता है। संगठन के प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इन नियम पुस्तिकाओं के अनुसार कार्य करे।

4) **संगठन पर नियंत्रण** : संगठन की संरचना के ऊपर नियंत्रण के लिए संगठन के चार्टों और नियम पुस्तिकाओं का उपयोग किया जाता है। संगठन की नियम पुस्तिकाओं में निम्नलिखित के संबंध में प्रयास किया जाता है। संगठन की समस्याओं और झगड़ों को सुलझाना, संगठन की दीर्घकालीन योजनाओं को संभव बनाना, संगठन की संरचना का युक्तिकरण करना, संगठन के प्रत्येक अंग का समुचित डिजाइन बनाना और उनका स्पष्टीकरण करना तथा संगठन के कार्यों के संबंध में समय-समय पर जाँच पड़ताल करना।

5) **कर्मचारियों के ऊपर नियंत्रण** : आम तौर पर कार्मिक प्रबंधक या कार्मिक विभाग का प्रमुख (चाहे वह किसी भी पद पर हो) संगठन के कर्मचारियों पर नियंत्रण रखता है। कभी-कभी प्रमुख कर्मचारियों पर नियंत्रण के लिए कार्मिक समिति का गठन किया जाता है।

6) **मजदूरी और वेतन पर नियंत्रण** : कार्य विश्लेषण और कार्य मूल्यांकन के द्वारा मज़दूरी और वेतन पर नियंत्रण रखा जाता है। इस कार्य को कार्मिक और उद्योग इंजीनियरी विभाग करते हैं। कभी-कभी इन विभागों की मदद के लिए मज़दूरी और वेतन समितियों का गठन किया जाता है।

7) **लागतों पर नियंत्रण** : मानक लागत और वास्तविक लागतों के बीच तुलना के द्वारा लागतों पर नियंत्रण रखा जाता है। लागतों के विभिन्न तत्वों के संदर्भ में मानक लागतें निर्धारित की जाती हैं। लागतों के नियंत्रण के कार्य में बजट नियंत्रण प्रणाली से भी सहायता मिलती है, जिसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के बजट आते हैं। नियंत्रक विभाग मानक लागतों को निर्धारित करने, वास्तविक लागतों का परिकलन करने तथा इन दोनों के बीच के अंतर संबंधी सूचना देता है।

8) **पद्धतियों और जन-शक्ति पर नियंत्रण** : पद्धतियों और जनशक्ति पर नियंत्रण इसलिए आवश्यक होता है ताकि प्रत्येक व्यक्ति योजना के अनुसार कार्य करता रहे। इस प्रयोजन से प्रत्येक विभाग के कार्यों का विश्लेषण समय-समय पर किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति जो कार्य करता है, जिन पद्धतियों को अपनाता है और जितना समय लगाता है, इन सबका अध्ययन इसलिए किया जाता है ताकि अनावश्यक कार्यों, पद्धतियों और समय को हटाया जा सके। पद्धतियों और जन-शक्ति पर नियंत्रण के उद्देश्य से अनेक संगठनों में अलग से एक विभाग या अनुभाग होता है जिसे "संगठन और पद्धति" अनुभाग कहा जाता है।

9) **पूँजीगत व्यय पर नियंत्रण** : पूँजीगत व्यय या स्थायी परिसम्पतियों की संप्राप्ति पर नियंत्रण परियोजनाओं के मूल्यांकन और श्रेणीकरण की प्रणाली द्वारा किया जाता है। मूल्यांकन और श्रेणीकरण का यह कार्य परियोजनाओं के महत्व के आधार पर किया जाता है जो प्रायः उनकी अर्जन क्षमता होती है। पूँजी बजट समग्र व्यवसाय के लिए बनाया जाता है। इस बजट की समीक्षा बजट समिति या विनियोजन समिति करती है। पूँजीगत व्यय पर सही ढंग से नियंत्रण के लिए योजना का होना आवश्यक होता है जिससे पूँजीगत व्यय से होने वाले लाभ को जाना जा सके और प्रत्याशित परिणामों के साथ तुलना की जा सके। इस प्रकार की तुलना इस अर्थ में महत्वपूर्ण होती है कि भावी बजट बनाने के लिए इससे काफी मार्गदर्शन मिलता है।

10) **सेवा विभागों पर नियंत्रण** : यह कार्य निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है

    क) प्रचालन विभागों के अंतर्गत बजट नियंत्रण के द्वारा;

    ख) किसी विभाग द्वारा माँग की जाने वाली सेवा की मात्रा की सीमा निर्धारित करके; और

    ग) सेवा विभागों के अध्यक्षों को यह अधिकार देकर कि वे अन्य विभागों द्वारा माँगी गई सेवा का मूल्यांकन करें और किसी विशेष विभाग को दी जाने वाली सेवा के संबंध में निर्णय अपने विवेक के अनुसार करें। कभी-कभी अनेक पद्धतियों के संयोजन को काम में लाया जाता है।

11) **उत्पादन क्षेत्र पर नियंत्रण** : उत्पादन क्षेत्र पर नियंत्रण का कार्य एक समिति करती है। जिसके सदस्य उत्पादन, विक्रय और अनुसंधान विभागों के व्यक्ति होते हैं। यह समिति बाज़ार की आवश्यकताओं के अध्ययन के आधार पर उत्पाद-मिश्रण (Product-mix) को नियंत्रित करती है। उत्पादन क्षेत्र को सरल और युक्तिपूर्ण बनाने के संबंध में प्रयास किए जाते हैं।

12) **अनुसंधान और विकास पर नियंत्रण** : अनुसंधान और विकास पर नियंत्रण दो प्रकार से किया जाता है :

    1) अनुसंधान और विकास के लिए बजट की व्यवस्था करके; और

    2) बचतों, विक्रयों और लाभ संभाव्यताओं को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक परियोजना का मूल्यांकन करके।

    अनुसंधान और विकास अत्यन्त तकनीकी क्रियाएँ हैं। अतः इनका नियंत्रण परोक्ष रूप से भी किया जाता है। यह कार्य अनुसंधान कर्मचारियों को कार्यक्रमों के संबंध में प्रशिक्षित करके एवं अन्य विधियों द्वारा उनकी योग्यता और निर्णय क्षमता को बढ़ाकर किया जाता है।

13) **विदेशी कार्यों पर नियंत्रण** : देश के अंदर कार्यों के ही समान विदेशी कार्यों का भी नियंत्रण किया जाता है। इन दोनों के ही संबंध में एक ही प्रकार के साधनों और तकनीकों को काम में लाया जाता है। अंतर केवल यह है कि विदेशी प्रतिष्ठानों के मुख्य प्रबंधकों के पास अधिक अधिकार होते हैं।

14) **बाह्य संबंधों पर नियंत्रण** : बाह्य संबंधों पर नियंत्रण जन-सम्पर्क विभाग करता है। यह विभाग कुछ विधियों को निर्धारित करके अन्य विभागों के लिए यह आवश्यक कर सकता है कि बाहर की पार्टियों के साथ अपने कार्यों के संबंध में वे उनका पालन करें।

15) **समग्र नियंत्रण (Overall control)** : संगठन के प्रत्येक विभाग का नियंत्रण होने से समग्र संगठन का नियंत्रण हो जाता है। परन्तु इसके साथ ही साथ समग्र नियंत्रण के लिए कुछ विशेष विधियाँ भी बनाई जाती हैं। यह कार्य बजट नियंत्रण, परियोजना, लाभ और हानि लेखा तथा तुलन-पत्र (Balance Sheet) की सहायता से किया जाता है। संगठन के प्रत्येक भाग द्वारा बनाए गए बजटों को एकीकृत और समन्वित करके एक मास्टर बजट बनाया जाता है। बजट समिति ऐसे बजट की समीक्षा करती है। यह बजट समग्र नियंत्रण के साधन का काम करता है। समग्र परिणामों को जानने के. लिए लाभ और हानि लेखा तथा तुलन-पत्र को भी काम में लाया जाता है।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत।

   i) नियंत्रण तकनीकों को तभी कुशल माना जाता है, जबकि अधीनस्थ कर्मचारी उन्हें पसंद करें।

   ii) विगत विचलनों में सुधार तभी लाया जा सकता है, जबकि नियंत्रण भविष्य की ओर देखने वाले हों।

   iii) नियंत्रण पर होने वाले व्यय के संबंध में विशेष ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि नियंत्रण के होने से प्रबंधकों की चिंता दूर हो जाती है।

   iv) जिस प्रबंधक का बाह्य कारकों के ऊपर नियंत्रण नहीं होता उसे आंतरिक गड़बड़ियों पर नियंत्रण का प्रयास नहीं करना चाहिए।

   v) प्रबंधक को यदि नियंत्रण के महत्वपूर्ण क्षेत्रों का पता चल जाता है, तब वह अधिकार का प्रत्यायोजन कर पाता है।

2) उन महत्वपूर्ण या प्रमुख परिणाम क्षेत्रों का नाम बताइये जिनमें प्रबंधक को नियंत्रण करना चाहिए।

   i) ....

   ii) ....

   iii) ....

   iv) ....

   v) ....

   vi) ....

   vii) ....

   viii) ....

13.9 नियंत्रण की परंपरावादी तकनीकें

प्रबंध का नियंत्रण कार्य नियोजित उद्देश्यों के आधार पर निष्पादन मानक स्थापित करने, वास्तविक निष्पादन के पूर्व–नियोजित मानकों से तुलना करने, यदि कोई विचलन हों तो उनका निर्धारण करने तथा निष्पादन को योजनानुसार रखने के लिए उचित उपायों को लागू करने का व्यवस्थित प्रयास है।

बिगत वर्षों में प्रबंधकीय नियंत्रण के उद्देश्य के लिए कई प्रकार के उपकरण और तकनीकें विकसित और प्रयुक्त की जाती रही हैं। इनमें से कुछ को परम्परावादी और कुछ को आधुनिक कहा गया है। नियंत्रण की परंपरावादी तकनीकें एक दीर्घ काल तक उपयोगी पाई गई है। तथा उनमें से कुछ आज भी संस्थाओं के द्वारा प्रयुक्त की जा रही हैं। सामान्यतः प्रयुक्त की जाने वाली दो ऐसी तकनीकें हैं, बजट नियंत्रण और मानक लागत लेखांकन। आइए हम इनका विस्तृत अध्ययन करें।

13.9.1 बजटीय नियंत्रण (Budgetory Control)

सरल शब्दों में बजट एक उपक्रम की योजना है, जो मौद्रिक अथवा भौतिक रूप में व्यक्त की जाती है। यह विभिन्न कार्यक्रमों तथा क्रियाओं के लिए निर्धारित उद्देश्यों के आधार पर परिभाषित अवधि के लिए वित्तीय अनुमानों का बोध कराती है। वास्तविक निष्पादन का नियंत्रण करने के उद्देश्य से, ये अनुमान लक्षित अथवा मानक बिन्दु माने जाते हैं। एक व्यावसायिक फर्म के लिए, बजट सामान्यतः उत्पादन और विक्रय योजनाओं का बोध कराते हैं, जिनके अनुसार निर्धारित लागत तथा कीमतों पर माल का उत्पादन तथा विक्रय कर और इच्छित लाभ प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। अस्तु, बजटिंग का अर्थ भविष्य के कार्यों के लिए, योजनाओं का निर्धारण करना होता है। यह उद्देश्यों के साथ–साथ कार्यान्वयन प्रक्रियाओं का निर्धारण करता है। यह मापदंड भी निर्धारित करता है, जिसके आधार पर नियोजित लक्ष्यों से निष्पादित परिणामों के विचलनों को मापा जा सकता है।

प्रबंधकीय नियंत्रण की तकनीक के रूप में, बजट नियंत्रण, **बजट के माध्यम से सिद्धांतों, प्रक्रियाओं तथा निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग किए जाने वाले व्यवहारों का बोध कराता है।** अस्तु, बजट नियंत्रण में बजटों को तैयार करना, बजट किए गए कार्यों से संबंधित प्रबंधकों के लिए उत्तरदायित्वों का निर्धारण तथा बजटीय परिणामों की वास्तविक परिणामों से निरंतर तुलना करने की क्रियाएँ शामिल की जाती हैं। इसका उद्देश्य बजट के अनुसार निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति तथा आवश्यकता पड़ने पर इसके संशोधन के लिए आधार प्रदान करना होता है।

सामान्य रूप से प्रयोग किए जाने वाले बजटों के प्रकार है – व्यय बजट, आगम बजट, रोकड़ बजट, पूँजी बजट, विक्रय बजट, उत्पादन बजट, क्रय बजट, श्रम बजट, मास्टर बजट।

13.9.2 मानक लागत लेखांकन (Standard Costing)

नियंत्रण की तकनीक के रूप में मानक लागत लेखांकन की परिभाषा देते हुए यह कहा जाता है कि एक तंत्र अथवा पद्धति है, जिसमें किए गए उत्पादन अथवा दी गई सेवा से संबंधित प्रत्येक उत्पाद की किस्म और उससे संबंधित लागत निकालने के लिए पूर्व अनुमानित ''मानक लागत'' का प्रयोग किया जाता है।

मानक लागत, लागत के पूर्वानुमानित आंकलन का बोध कराती है, जिसको मानक अथवा मापदंड के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। दी हुइ परिस्थितियों में क्या लागत होनी चाहिए, इस बात का मानक लागत ज्ञान कराती है। मानक लागत लेखांकन के अंतर्गत मानक लागत नियंत्रण का आधार प्रदान करती है। वास्तविक लागत की मानक लागत से तुलना की जाती है, विचलनों के होने पर उनका विश्लेषण किया जाता है और विषम प्रवृत्तियों पर नियंत्रण पाने के लिए उपयुक्त कदम उठाए जाते हैं। अस्तु, मानक लागत लेखांकन मूल रूप से लागत नियंत्रण के लिए एक उपकरण मानी जा सकती है।

मानक लागत लेखांकन मूल रूप से बजटिंग अथवा बजट नियंत्रण का एक भाग है। यह ध्यान रखना चाहिए कि बजट नियंत्रण एक विस्तृत कार्य है। इसमें उद्देश्यों को निर्धारित कर सभी विभागों के कार्यों का नियोजन किया जाता है। यह लागत तथा व्ययों के मानक निर्धारित करने के साथ विक्रय से आय की राशि के लक्ष्यों का भी आंकलन करती है। मानक लागत लेखांकन विशेष रूप से प्रत्यक्ष सामग्री और श्रम की लागतों के लिए व्यय बजट बनाने का आधार प्रस्तुत करती है।

13.10 आधुनिक तकनीकें

बजट नियंत्रण तथा मानक लेखांकन जैसी परम्परागत तकनीकों के अतिरिक्त भी नियंत्रण की कई अन्य तकनीकें आज के युग में विकसित की जा चुकी हैं। इन तकनीकों को गैर–बजटरी तकनीकें भी कहा जा सकता है। इनमें से एक अथवा अधिक का, बजटरी नियंत्रण और मानक लागत लेखांकन के साथ प्रयोग किया जा सकता है। अब हम अधिक महत्वपूर्ण तकनीकों का विस्तार से वर्णन करेंगे।

13.10.1 सम–विच्छेद विश्लेषण (Break-Even Analysis)

नियंत्रण तकनीक के रूप में सम–विच्छेद विश्लेषण बिक्री के परिमाण में होने वाले लागत के संदर्भ में परिवर्तन तथा इस परिवर्तन का मुनाफे पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण कहा जा सकता है। मूल रूप से यह लागत, बिक्री के परिमाण और मुनाफे के बीच संबंध का निर्धारण करने से संबंधित है।

उपक्रम के प्रबंध के बड़े कार्यों में से एक कार्य बिक्री के परिभाषा में परिवर्तन से लाभ पर होने वाले प्रभाव को ज्ञात करना होता है। वे बिक्री के परिमाण के उस बिंदु को ज्ञात करने के लिए उत्सुक रहते हैं, जिस पर लागत पूरी तरह निकल आती है और लाभ होने लग जाता है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए दो प्रकार की लागतों में अंतर स्पष्ट किया जाता है– परिवर्तनशील लागत (variable costs) जैसे प्रत्यक्ष माल की लागत, प्रत्यक्ष मजदूरी आदि और स्थायी लागत Fixed costs) जैसे, कारखाना तथा कार्यालय का किराया, प्रबंधकों का वेतन आदि। यदि उत्पादन और बिक्री में वृद्धि होती है तो प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत स्थिर रहती है किन्तु स्थायी लागत प्रति इकाई कम होना शुरू हो जाती है। मान लीजिए, एक उत्पाद की प्रत्यक्ष सामग्री की प्रति इकाई लागत 10/– रुपये तथा प्रत्यक्ष मजदूरी प्रति इकाई की लागत 5/– रुपये आती है, जबकि पूर्ण उत्पादन क्षमता प्राप्त करने पर स्थायी लागत 400/– रुपये आती है। तब 100 इकाइयों का उत्पादन तथा बिक्री करने पर, परिवर्तनशील लागत (10+5) × 100 अर्थात् 1,500/- रुपये होगी। 200 इकाई के लिए यह लागत दुगनी अर्थात् 3,000 रुपये होगी। किन्तु स्थायी लागत दोनों दशाओं में समान रहेगी। इस प्रकार 100 इकाई की कुल लागत 1,900/- रुपये और 200 इकाई के लिए यह लागत 3,400/- रुपये होगी, 3,800/- रुपये नहीं। अस्तु, कुल

लागत में वृद्धि बिक्री परिमाण में वृद्धि के अनुपात से कम होती है। यदि उत्पादन तथा बिक्री का परिमाण कम हो जाता है तो प्रभाव उल्टा होता है। अस्तु, 50 इकाइयों के लिए कुल लागत (15×50) + 400 अर्थात् 1,150/- रुपये होगी। यह 1,900 रुपये (जो 100 इकाई की कुल लागत है) की आधी नहीं होगी। दूसरे शब्दों में, कुल लागत में वृद्धि आय के अनुपात से कम होती है।

पुनः मान लीजिए उत्पाद का प्रति इकाई विक्रय मूल्य 17/- रुपये निर्धारित किया जाता है। इस दशा में, विक्रय की गई मात्रा पर 15/- रुपये प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत पूरी करने के पश्चात् 2/- रुपये प्रति इकाई अंशदान होगा। 400/- रुपये की स्थायी लागत को पूरा करने के लिए, फर्म को कम से कम 200 इकाइयों का विक्रय करना आवश्यक होगा। तब कुल विक्रय मूल्य (200×17 रुपये) कुल लागत अर्थात् 3,400/- रुपये के बराबर हो पाएगा।

इस प्रकार 200 इकाइयों की बिक्री (अथवा 3,400/- रुपये की बिक्री आय) वह परिमाण है, जिस पर न लाभ होता है और न ही हानि। इसी को हम सम–बिच्छेद परिमाण (brak-even volume) कहते हैं। इस बात से यह ज्ञात होता है कि व्यवसाय को हानि से बचाने के लिए इस संख्या में इकाइयों की बिक्री करना आवश्यक है। सम–बिच्छेद परिमाण के ऊपर प्रत्येक उत्पाद इकाई की बिक्री करने से लाभ प्राप्त होगा। यदि 250 इकाइयों की बिक्री जाती है तो लाभ 100/- रुपये (50×2/- रुपये) होगा। यह इसलिए है क्योंकि परिवर्तनशील लागत में 15/- रुपये प्रति इकाई से वृद्धि होगी, जबकि बिक्री से प्राप्त आय में 17/- रुपये प्रति इकाई की वृद्धि होगी। स्थायी लागत में वृद्धि न होने से 2/- रुपये प्रति इकाई की दर से 50 इकाइयों पर लाभ होगा। बिक्री मूल्य और प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत का अंतर अंशदान (Contribution margin) कहलाता है। इस अंतर का मूल्य स्थायी लागत की वसूली में सहायक होता है। अस्तु, बिक्री के सम–विच्छेद परिमाण की गणना अंतर अंशदान (Contribution margin) से स्थायी लागत को विभाजित कर दी जा सकती है। उपरोक्त उदाहरण में अंशदान 2/- रुपये (17/- रुपये– 15/- रुपये) है तथा स्थायी लागत 400/- रुपये है। अतः सम–विच्छेद परिमाण 400/- रुपये ÷ 2, अर्थात् 200 इकाइयाँ होगा।

13.10.2 पर्ट (कार्यक्रम मूल्यांकन तथा पुनरीक्षण तकनीक) (Programme Evaluation and Review Technique, PERT)

अधिकांश उपक्रमों की सफलता की कुंजी परियोजनाओं अथवा क्रियाओं का स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट समय तथा लागत में किसी उद्देश्य की प्राप्ति का परीक्षण करना होता है। प्रबंध को इस स्थिति में विस्तृत कार्यों, उनके पारस्परिक संबंधों का बारीकी से निर्धारण करना होता है। ऐसा करने से योजना के अनुसार वह इन कार्यों को निर्दिष्ट समय में पूरा करने के लिए आवश्यक साधनों तथा समय का अनुमान लगाने तथा परियोजना की लागत और समय पर निरीक्षण एवं नियंत्रण कर पाता है।

नेटवर्क (network) विश्लेषण एक तकीक है, जो परियोजना को पूरा करने में लगने वाले समय और परियोजना की लागत को सभी प्रकार से न्यूनतम रखने के लिए प्रयोग की जाती है। नेटवर्क विश्लेषण ऐसी परियोजनाओं के लिए प्रमुख रूप से उपयुक्त होते हैं, जो नैत्यिक (Routine) अथवा पुनरावृत्ति (Recurring) प्रकृति की नहीं होती और जो एक बार अथवा कुछ बार ही की जाती है। जैसे– भवनों तथा बांधों का निर्माण, शोध और विकास, नवीन उत्पादों का विपणन, एक जहाजरानी का निर्माण, कारखानों का निर्माण, प्रक्षेपास्त्र (मिसाइल) का उत्पादन आदि–आदि। पर्ट तथा सी.पी.एम., नेटवर्क विश्लेषण की दो बहुत ही लोकप्रिय विधियाँ हैं, जो आधुनिक प्रबंध जगत में प्रयोग की जाती हैं।

पर्ट मूल रूप से परियोजना (प्रोजेक्ट) की तकनीक है, जो निम्नलिखित प्रबंधकीय कार्यों में उपयोगी रहती है : नियोजन, सूचीयन, नियंत्रण आदि।

13.10.3 सी.पी.एम. (क्रांतिक पथ पद्धति) (Critical Path Method)

सन् 1950 के दशक में ड्यू पोइन्ट कम्पनी के इंजीनियरों ने कार्यों को सूचियित करने, परियोजनाओं का निर्माण करने, शोध और विकास कार्यक्रमों के लिए तथा अन्य बहुत–सी परिस्थितियों में जहाँ समय और निष्पादन के अनुमान लगाने होते हैं, सी.पी.एम. को विकसित किया। सी.पी.एम. में एक कार्यक्रम अथवा परियोजना को तैथिक क्रमबद्धता के आधार पर छोटे–छोटे भागों में विभक्त किया जाता है। परियोजना को पारस्परिक संबंधी बहुत से भागों में विभक्त करने से सी.पी.एम. तकनीक एक योजना के अत्यंत सामरिक महत्व वाले तत्वों का ज्ञान कराती है। इस का उद्देश्य, सम्पूर्ण परियोजना को श्रेष्ठतम रूप में डिजाइन करना, नियोजित करना, समन्वयन और नियंत्रण करना होता है।

आइए, हम क्रांतिक पथ की विचारधारा का नियंत्रण की तकनीक के रूप में क्रांतिक पथ पद्धति के महत्व को मूल्यांकन करने के लिए अवलोकन करें। परियोजना की प्रक्रियाओं के जाल में आये परियोजना के प्रारंभ से परियोजना के अन्त तक निष्पादन किए जाने वाले अनेकों चरणों अथवा पथों की गणना कर सकते हैं। प्रत्येक चरण में बहुत सी प्रक्रियाएँ होती हैं, जिनको पूरा करने का समय भिन्न–भिन्न होता है। परियोजना के विभिन्न पथों में लगने वाले समय का अध्ययन हमको यह बतला सकता है कि विशिष्ट परियोजना को कम से कम कितने समय में पूरा किया जा सकेंगे। **प्रक्रियाएँ (पथ) जिनको पूरा करने में अधिकतम समय लगेगा** कार्यक्रम अथवा परियोजना को पूरा करने के लिए **सबसे कम समय** लगावेंगी। इस पथ को ''क्रांतिक पथ'' (Critical Path) कहा जाता है क्योंकि यह सबसे अधिक अवधि का पथ होता है और परियोजना को सबसे कम समय में पूरा करने का संकेत देता है। इसको क्रांतिक पथ इसलिए कहा जाता है कि इस पथ पर **पड़ने वाली प्रक्रियाओं को पूरा करने में की गई देरी से** सम्पूर्ण परियोजना को पूरा करने में देरी हो जायेगी। समय पर इस परियोजना को पूरा करने के लिए ''क्रांतिक पथ'' पर पड़ने वाली प्रक्रियाओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

13.10.4 सांख्यिकी किस्म नियंत्रण (Statistical Quality Control)

किस्म नियंत्रण का उद्देश्य एक उत्पाद अथवा सेवा की किस्म को मानक किस्म से तुलना कर यह जाँचना होता है कि निर्धिरित मानक को वह वस्तु अथवा सेवा पूरा करती है अथवा उसके आकार, वजन, परिष्कृति आदि में कोई कमी रह गई है। प्रत्येक उत्पादन प्रक्रिया में सदैव कुछ मानक उत्पादक अथवा उपभोक्ताओं द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। वह वस्तु अथवा सेवा जो निर्धारित मानक के अनुरूप होती है, अच्छी किस्म की कहलाती है। किन्तु बहुत से कारणों से प्रत्येक उत्पाद प्रक्रिया में कुछ विचलन रह ही जाता है। अतः इस विचलन का पता करना आवश्यक हो जाता है। यह विचलन गुणात्मक अथवा संख्यात्मक किसी भी प्रकार का हो सकता है। संख्यात्मक विचलनों का प्रत्यक्ष रूप से मापन किया जा सकता है। जैसे ऊँचाई, भार, व्यास आदि। ये विचलन किसी विशेष यंत्र की सहायता से ज्ञात किए जा सकते हैं। दूसरी ओर, संख्यात्मक विचलनों की भांति गुणात्मक विचलनों की प्रत्यक्ष रूप से जांच नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए दरारें टूट–फूट, रंग आदि। ये विचलन निरीक्षण द्वारा अथवा अच्छी और त्रुटिपूर्ण इकाइयों में अंतर करके ही ज्ञात किए जा सकते हैं। किन्तु उत्पाद की किस्म में विचलन उत्पादन प्रक्रिया की विशेषता है। समस्त संभाव्य सावधानियों तथा उपायों के अपनाने के पश्चात् भी कुछ अनपेक्षिक बाधाओं के

कारणों को दैवयोगी कारण कहा जाता है। उदाहरण के लिए, शक्ति साधन में तापक्रम अथवा बोल्टेज में अकस्मात परिवर्तन होने के कारण मशीन की गति में परिवर्तन आदि। तंत्र में इन कारणों की उपस्थिति के अनेक कारण हो सकते हैं, जिनकी पहचान करना कठिन होता है और जिनको दूर करना आर्थिक दृष्टिकोण से उचित नहीं ठहराया जाता। विचलन के अन्य कारण भी हो सकते हैं, जो निर्धारित मानकों से उत्पाद में विचलन लाते हैं। ये कारण व्यक्तिगत कहे जा सकते हैं। इनको पहचाना जा सकता है तथा आर्थिक दृष्टि से दूर भी किया जा सकता है। इन कारणों से उत्पन्न विचलनों का आकार उत्पादन प्रक्रिया की परिस्थितियों, कच्चे माल की प्रकृति, परिचालन व्यवहार आदि पर निर्भर करता है। इन कारणों को ''निर्धार्य'' कारण कहा जाता है।

सांख्यिकी किस्म नियंत्रण एक ऐसी तकनीक को बताता है, जो उत्पाद की किस्म में दैवयोगी कारणों अथवा निर्धार्य कारणों से हुए विचलन का ज्ञान कराती है। निर्धार्य कारणों से उत्पन्न विचलन को पहचानने के उपरांत, किस्म को सुधारने के लिए कुछ सुधारात्मक उपाय अपनाए जाते हैं। सांख्यिकी किस्म नियंत्रण, नियंत्रण चार्टों की सहायता से अपनाया जाता है। नियंत्रण चार्ट बनाने के लिए समस्त उत्पाद रेखा को कई उप–समूहों में बाँटा जाता है। इन उप–समूहों का चयन करने का आधार इस प्रकार का होता है कि प्रत्येक उप–समूह में आने वाले उत्पाद की किस्म में हुए विचलन को दैवयोगी कारणों के रूप में जाना जा सकता है, जबकि विभिन्न उप–समूहों में तत्संबंधित विचलन निर्धार्य कारणों से भी हो सकता है। यह ज्ञात करने के लिए कि प्रक्रिया नियंत्रण में है अथवा नहीं उप–समूह में तथा विभिन्न उप–समूहों के बीच होने वाली किस्म में है अथवा नहीं उप–समूह में तथा विभिन्न उप–समूहों के बीच होने वाली किस्म में विचलन के गुणों का किसी भी विधि से विश्लेषण किया जाता है।

प्रक्रिया में नियंत्रण सीमाओं को निर्धारित करने की मान्यता यह है कि उत्पादन पद्धति स्थायी है और केवल दैवयोगी कारण ही उपस्थित है। यदि पद्धति में निर्धार्य कारण भी उपस्थित होते हैं तो किस्म, गुण नियंत्रण की दोनों सीमाओं के बाहर होगी।

13.10.5 प्रबंध अंकेक्षण (Management Audit)

प्रबंध अंकेक्षण व्यवस्था के समूचे कार्य–निष्पादन के मूल्य निर्धारण और विश्लेषण का सुव्यवस्थित और निष्पक्ष परीक्षण है। यह मूलतः उद्देश्यों और संगठन की संरचना की विस्तृत जाँच, योजनाओं, नीतियों, कार्यों (संचालनों), इसके द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले व्यावहारिक तथा मानवीय संसाधनों तथा कार्यान्वयन की विधियों द्वारा प्रबंध के समूचे निष्पादन के मूल्यांकन की प्रक्रिया है।

प्रबंध अंकेक्षण की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि व्यापक अंकेक्षण की बजाय कम्पनी संगठन के विशिष्ट भाग को भी प्रार्थना कर सकती है। इसके कार्यक्षेत्र के संबंध में ''उत्पादन क्षमता'' अथवा ''निवेश मूल्यांकन'' प्रबंध अंकेक्षण का विषय हो सकता है, बल्कि इसका प्रयोग लाभ–निष्पादन अथवा पूँजी के बजटीकरण के महत्वपूर्ण निर्धारण के मार्गदर्शन (निर्देशन) के लिए भी किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 2

1) सम–विच्छेद विश्लेषण का क्या अर्थ है?

....

....

....

....

....

2) सांख्यिकी किस्म नियंत्रण की परिभाषा दीजिए।

....

....

....

....

1) पर्ट और सी.पी.एम के बीच अन्तर बताइए।

....

....

....

....

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

13.11 सारांश

नियंत्रण कार्य को भली-भाँति समझे बिना प्रबंध कार्यों का अध्ययन पूरा नहीं होता। नियंत्रण शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है। यह विश्लेषण करने की प्रक्रिया कि क्या योजनाबद्ध रूप में कार्य किए जा रहे हैं और यदि ऐसा नहीं हो रहा है तो योजना के अनुसार कार्य करने के लिए सुधारक उपाय किए जाएँ। यह एक निरंतर प्रक्रिया है जो प्रबंधकों को इस अर्थ में सहायता करती है कि वह अपने अधीनस्थों से नियत मानकों के अनुकूल कार्य ले सकें, यदि कोई विचलन होता है तब शीघ्र उसका पता लगा सकें और भविष्य में ऐसा न हो, इसके लिए प्रभावी कदम उठा सकें।

नियंत्रण के विशिष्ट लक्षण ये हैं : नियंत्रण सर्वव्यापी कार्य हैं, नियंत्रण सतत प्रक्रिया है, योजना नियंत्रण का आधार है, कार्य योजना का मूल तत्व है, नियंत्रण भविष्य की ओर देखने वाली प्रक्रिया है, प्रत्यायोजन नियंत्रण का आधार है और नियंत्रण के द्वारा संगठन में अनिश्चितता का सामना किया जाता है।

समुचित नियंत्रण संगठन की कार्यवाही को सरल बना देता है। नियंत्रण की कुशल कार्यवाही लेने से संगठन में व्यवस्था और अनुशासन का वातावरण बना रहता है जिससे कार्य के दोषपूर्ण होने या उसमें विलंब होने की संभावना न्यूनतम हो जाती है। नियंत्रण से होने वाले विभिन्न प्रकार के लाभ के कारण भी इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। ये लाभ हैं कार्यवाहियों में समंजन, प्रबंधकीय दायित्व, निधि, प्रभाव, कार्य के दौरान समन्वय तथा संगठनात्मक कुशलता और प्रभाविता।

नियंत्रण की प्रक्रिया के अंतर्गत ये बातें आती हैं: मानकों का निर्धारण, कार्य-निष्पादन का माप, मानकों के साथ कार्य-निष्पादन की तुलना करना और यदि उनमें अंतर हैं तो उनके संबंध में पता लगाना तथा उपचारी कार्यों द्वारा विचलनों में सुधार लाना।

नियंत्रण की प्रणाली प्रभावी हो तथा अपने उद्देश्य को पूरा कर सके इसके लिए उसे कुछ शर्तों को पूरा करना होता है। ये शर्ते हैं: (1) स्पष्ट शब्दों में उद्देश्यों का स्पष्टीकरण; (2) नियंत्रण तकनीकों की कुशलता; (3) नियंत्रण के लिए उत्तरदायित्वों का निर्धारण; (4) प्रत्यक्ष नियंत्रण; (5) संगठित की जाने वाली प्रणाली की उपयुक्तता; (6) लचीलापन; (7) आत्म-संयम को प्रोत्साहन; (8) महत्वपूर्ण स्थानों का नियंत्रण; (9) समय पर सुधारक कार्य; (10) भविष्य की ओर देखने वाला नियंत्रण; (11) मानवीय कारक पर ध्यान देना; (12) किफायती; (13) वस्तुपरक मानकों का होना।

इन सब प्रकार के पूर्वोपायों को करने के बावजूद भी नियंत्रण सदैव पूर्ण नहीं हो पाते। क्योंकि ऐसे अनेक प्रतिबंधक कारक होते हैं, जो नियंत्रणों की प्रभाविता को रोकते हैं।

उन प्रमुख परिणाम क्षेत्रों के आधार पर भी नियंत्रणों के बीच भेद किया जा सकता है। जिसमें नियंत्रण कार्य किए जाने चाहिए। स्वरूप और प्रयोजन के आधार पर भी नियंत्रण के बीच भेद किया जा सकता है। इस प्रकार नियंत्रणों का वर्गीकरण विभिन्न श्रेणियों में किया जा सकता है। ये हैं : (1) भौतिक और वित्तीय नियंत्रण; (2) वास्तविक और प्रत्याशित कार्य-निष्पादन पर नियंत्रण; और (3) कार्यों या कार्यक्षेत्रों पर नियंत्रण।

नियंत्रण की परंपरावादी तकनीकें में शामिल हैं : बजटीय नियंत्रण, मानक लागत लेखांकन। आधुनिक तकनीकें में शामिल हैं: सम-विच्छेद विश्लेषण, कार्यक्रम मूल्यांकन तथा पुनरीक्षण तकनीक, क्रांतिक पथ पद्धति, सांख्यिकी किस्म नियंत्रण और प्रबंध अंकेक्षण।

13.12 शब्दावली

नियंत्रण	:	यह पता लगाने की प्रक्रिया कि कार्य का निष्पादन योजना के अनुरूप हो रहा है या नहीं और आवश्यक होने पर उनमें सुधार लाना।
अपवाद द्वारा नियंत्रण	:	नियंत्रण की प्रक्रिया में होने वाले केवल महत्वपूर्ण या अपवादकारक विचलनों पर ध्यान देना।
वित्तीय नियंत्रण	:	नकदी प्रवाह, पूँजी, आय, व्यय और लाभ पर नियंत्रण।
भविष्य की ओर देखने वाला नियंत्रण	:	प्रतिष्ठान की भावी कार्यवाहियों के संरक्षण के लिए विचलनों में सुधार करना।
भौतिक नियंत्रण	:	सम्पत्तियों, परिसम्पत्तियों और भौतिक वस्तुओं के संरक्षण और रख-रखाव पर नियंत्रण।
मानक	:	कार्य-निष्पादन के आदर्श
महत्वपूर्ण स्थानों का नियंत्रण	:	नियंत्रण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण और सीमा निर्धारक कारकों या स्थानों का पता लगाकर उनके संबंध में पूरी तरह ध्यान देना।

13.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) प्रबंधन के नियंत्रण कार्य की परिभाषा है। यह निर्धारित करने की प्रक्रिया कि क्या प्राप्त किया जाना है, क्या प्राप्त किया जा रहा है और यदि आवश्यक हो तो ऐसे सुधारक उपायों को काम में लाना जिससे योजना के अनुरूप कार्य हो सके।

2) i) गलत ii) गलत iii) सही iv) गलत v) सही

3) i) कार्य-निष्पादन के मानकों की व्यवस्था करना,

   ii) कार्य-निष्पादन का माप करना,

   iii) मानकों के साथ कार्य-निष्पादन की तुलना करना और यदि कोई अंतर है तो उनके कारणों का पता लगाना।

   iv) सुधारक उपायों को काम में लाना।

बोध प्रश्न 2

1) i) गलत, ii) सही, iii) गलत, iv) गलत, v) सही

2) i) बाजार स्थिति ii) नवीन प्रक्रिया iii) उत्पादिता iv) भौतिक संसाधन v) वित्तीय संसाधन vi) लाभप्रदता vii) प्रबंधक का कार्य-निष्पादन और उसकी अभिवृत्ति viii) सार्वजनिक उत्तरदायित्व।

13.14 स्वपरख प्रश्न

1) प्रबंधन के नियंत्रण कार्य से आप क्या समझते हैं? नियंत्रण के प्रमुख विशिष्ट लक्षणों का वर्णन कीजिए।

2) "नियंत्रण आधारभूत प्रबंधन कार्य है, जो योजनाओं के अनुरूप कार्यों को पूरा कराता है'' इस संबंध में अपना मत प्रकट कीजिए।

3) व्यवसाय उपक्रम में नियंत्रण के महत्व के संबंध में बताइए। प्रभावी नियंत्रण प्रणाली की क्या आवश्यकताएँ हैं?

4) नियंत्रण प्रणाली में आने वाली विभिन्न अवस्थाओं की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

5) प्रभावी नियंत्रण प्रणाली की विभिन्न शर्ते क्या हैं तथा नियंत्रण की क्या सीमाएँ होती हैं? चर्चा कीजिए।

6) विभिन्न प्रकार के नियंत्रण या नियंत्रण क्षेत्रों के संबंध में चर्चा कीजिए।

टिप्पणी : इन प्रश्नों से आपको इस इकाई को भली भाँति समझने में मदद मिलेगी। इनका उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। लेकिन अपना उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजिए। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

NOTES

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY